कुछ प्रारम्भिक शब्द

भारत-वसुन्धरा प्राचीनतम काल से वीरप्रसू रही है। इसके लिखित इतिहास में और अलिखित इतिहास के गहनतम गह्वर में [illegible]ना और आत्मत्याग के ऐसे-ऐसे आख्यानों के सूत्र छिपे हैं जिन्हें पढ़कर या सुनकर चकित होना पड़ता है। रामायण-काल से लेकर महाभारत-काल तक ऐसे ऐसे वीरपुंगव हुए हैं जिनके वैयक्तिक और सामूहिक वीरत्व के वृत्तों को पढ़कर किस भारतीय की छाती जातीय गर्व से फूल नहीं उठती! मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराम, राजनीति-विशारद श्रीकृष्ण, पितृभक्त भीष्म, गाण्डीवधारी अर्जुन, गदाधारी भीम, अर्जुनकुमार अभिमन्यु और इन-जैसे अनेक और महावीरों के आदर्श जीवनों की घटनाओं को हम आज हजारों सालों के बाद भी, नित पढ़ते हैं और सुनते हैं। उनकी स्मृतियां अब भी वैसी की वैसी हमारे हृदय-पटलों पर अंकित हैं। इसका कारण यह है कि उन लोगों की वीरता के आख्यानों को कविता का अमर रूप देने के लिए सौभाग्यवश उन्हें वाल्मीकि और व्यास-जैसे महाप्रतिभावान् कवि मिल गये थे। इसीलिए उनकी यशोदुन्दुभि अब भी बज रही है।

इसके पश्चात् भारतीय इतिहास के मध्यकाल में भी विक्रम, चन्द्रगुप्त और अशोक आदि महावीर हुए, परन्तु उनकी वीरता के इतिवृत्त उनके अपने समय के बहुत बाहिर नहीं पहुँच सके, क्योंकि उन्हें कोई वाल्मीकि अथवा व्यास नहीं मिले और यदि मिले भी होंगे तो उनके रचे हुए ग्रन्थ आक्रमणकारी विदेशियों के आघातों से नष्ट-भ्रष्ट होकर धरागर्भ में ही विलीन हो गये होंगे यह ऐतिहासिक काल अब तक अल्पप्रकाशित ही समझा जाता है हाँ, जब से भूगर्भ के नीचे से उस समय के वैभव के कुछ खंड-

हर, शिलालेख, मुद्रायें, प्रतिमायें और कुछ
रही हैं, तब से उस समय पर प्रकाश की
धीमी-धीमी पड़ने लगी हैं !

इस समय के बहुत देर बाद राजपूत
है। उस समय राजपूतों ने वीरता के जैसे
उनसे तो यही प्रतीत होता है कि उनमें कोई
रही थी। राजपूत यह नाम ही 'वीरता' का
जाना चाहिए। प्राणों का उन्हें मोह न था,
न थी, आन और मान की रक्षा के लिए वे
तलवारों पर खेलने लगते थे, और सिरधड़
मरने-मारने के लिए रणभूमि में उतर आते
उदाहरण मिलेंगे कि नवोढ़ा वधू का डोला
प्रवेश करते ही रण का निमन्त्रण पहुँचा और
बदलकर वीरवेष धारण कर लिया
आशा को हृदय में दबाये बैठी रमणी का सुख
यात्रा को चल पड़े। पुरुषों की ही यह दशा
भी इस बात में किसी से कम न थीं।
संभाले हुए जिस पुत्र के भविष्य
मन्दिर का निर्माण कर रही हों, उसी को
ही, स्वयं भालतिलक लगाकर वे रणाङ्गण
हिचकिचाती न थीं। बहनें भाइयों के हाथों में
गीत गाती थीं, पत्नियां प्रिय पतियों की कमर
उनके गलों में जयमालायें पहनाती थीं और
स्वयं भी रण में उनको सहयोग देती थीं। इन
न ऐहिक सुख था और न सांसारिक वैभव।

करते उसकी गोद में प्राण देना उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य और ईश्वरप्राप्ति का साधन था।

परन्तु खेद है कि राजपूतों में वैयक्तिक वीरता की ही प्रधानता रही है। यदि सामूहिक बल को उत्पन्न करने और उसे अक्षुण्ण रखने की इनमें दूरदर्शिता होती तो भारत भूमि पर विदेशियों के पाँव जम ही न पाते। यह उनकी अदूरदर्शिता थी, न कि कोई और संकुचित भाव। वैयक्तिक शूरता के निदर्शन में जो चमत्कार इन्होंने दिखाये हैं उनकी गाथायें किसी इतिहास के पन्नों में नहीं मिलतीं. केवल मौखिक कहानियों की या चारणों के गीतों की परम्परा से हमें कुछ पहुँच पाई है। हां, टाड आदि कुछ ऐतिहासिक खोजियों की कृपा से इनके सम्बन्ध में कुछ-कुछ बातों का पता लगा है। यदि वे लोग भी कुछ न लिखते तो इस वीरता के स्वर्णयुग के दृश्य से हम बिलकुल ही वंचित रह जाते।

राजपूती वीरता का प्रधान केन्द्र मेवाड़ रहा है। इसकी रक्षा में हजारों वीरों की देहें बलिदान हो चुकी हैं। इसका चप्पा चप्पा भूखण्ड, इसकी एक-एक रक्तरञ्जित ईंट अपना-अपना इतिहास स्वयं बता रही हैं।

जैसे ऊपर बताया गया है टाड साहिब ने 'राजस्थान का इतिहास' में राजपूत-वीरता की बहुत बड़ी प्रशंसा की है। इन्होंने एक जगह आठ-दस पंक्तियों में ही केवल एक ऐसी घटना का वर्णन किया है जिसकी समता सांसारिक इतिहास में अद्वितीय है। जिसे पढ़कर निस्तब्ध होना पड़ता है।

जिस समय बादशाह जहांगीर ने अमरसिंह के विरुद्ध रण दुन्दुभि बजाई थी, उस समय अमरसिंह के सम्मुख यह समस्या

उत्पन्न हुई कि राजपूत सेना का हिरौल (अग्रगण्य) ... जाय, चूड़ावतों को या शक्तावतों को । दोनों इसे ... थे । चूड़ावतों के यह अधिकार में था परन्तु ... था वे ही इसे सदा क्यों भोगते रहें । शक्तावत ... उनसे कम नहीं हैं !

अंत में सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि जो भी ... वत अथवा चूड़ावत, अन्तला दुर्ग को विजित कर ... प्रवेश करेगा वही हिरौल का अधिकारी होगा । ... निर्णय को सुनते ही उछल पड़े । कौन राजपूत ... अवसर को हाथ से निकलने देता है !

अन्तला बहुत दृढ़ और सुरक्षित दुर्ग था । उस ... शासकों का अधिकार था । बस, चल पड़े दोनों दल ... करने । परन्तु भीमकाय दुर्ग की चारों ओर की ऊँची दीवारें और लोहे के नुकीले कीलों से मढ़ा हुआ एक ... उसके अन्दर घुसने में बाधाएं थीं । इसके बाद किस दलों ने दुर्ग के अन्दर प्रवेश करने का उद्योग किया ... तरह वे घुसे—इसके विषय में सभी कुछ नाटक के इस वर्णित है । इन दृश्यों के नायक शक्तावत सेना पल्लजी ... वीरता का आदर्श संसार के सामने रखा है, यह ... जब हाथी के माथे में द्वार में गड़े हुए कीलों के चुभ ... कारण, उसके आघातों से दुर्गद्वार न खुल सका तो ... भय से कि चूड़ावतों का प्रवेश पहले न हो जाय ... से मढ़ा हो गया । परिणाम यह हुआ कि हाथी की टक्कर से ... खुल गया परन्तु नुकीले कील उनकी देह में धँस गए । रोम ... रुधिर-प्रवाह बह निकला । अंत में उन्होंने वीरगति पाई ।

रण में अनेकों वीर खेत आते रहे हैं, किन्तु उनके सामने ... मरने का भय होता है, वहां मारने की आशा भी होती है। ... को लिये वे रणांगण में कूदते हैं। परन्तु कौन मनुष्य सामने खड़ी अवश्यंभावी भयंकर मृत्यु का इस प्रकार जान-बूझ कर सहर्ष आलिंगन करता है! बल्लजी ही ऐसे थे जिन्होंने यह किया। उनकी यह हिम्मत और बलिदान हमारे नवयुवकों के जीवन का आदर्श होना चाहिये। जिस देश और जाति को इस ...र के रत्न अलंकृत करते हैं, उसका नाम संसार भर में अमर ...ता है।

बल्लजी का अन्तल्ला द्वार पर बलिदान, सालुम्बा सरदार का दुर्ग की दीवारों पर प्राणदान, चन्दा ठाकुर का उनकी मृत देह को ...री में बाँध और पीठ पर लादकर लड़ते रहना, उस समय के ...के अधिकारी मुगलों का आमोद-प्रमोद में पड़े होकर शतरंज के खेल में व्यस्त रहना आदि नाटक की प्रमुख घटनायें ऐतिहासिक हैं। शेष काल्पनिक हैं। ये काल्पनिक घटनायें भी उस समय की वीर नारियों की वीरता का निदर्शन हैं।

बल्लजी के जीवन की इस वीरोचित घटना को इन दृश्यों द्वारा पाठकों के सम्मुख रखते मुझे अपार हर्ष हो रहा है। इससे यदि उनकी कुछ भी सन्तुष्टि हुई हो तो मैं इस प्रयास को सफल समझूंगा।

२-९-१९४६, सन्त गोकलचन्द्र

रण में अनेकों वीर खेत आते रहे हैं, किन्तु उनके सामने जहां मरने का भय होता है, वहां मारने की आशा भी होती है। इसीआशा के लिये वे रणांगण में कूदते हैं। परन्तु कौन मनुष्य सामने खड़ी अवश्यंभावी भयंकर मृत्यु का इस प्रकार जान-बूझ कर सहर्ष आलिंगन करता है! बल्लूजी ही ऐसे थे जिन्होंने यह किया। उनकी यह हिम्मत और बलिदान हमारे नवयुवकों के जीवन का आदर्श होना चाहिये। जिस देश और जाति को इस प्रकार के रत्न अलंकृत करते हैं, उसका नाम संसार भर में अमर रहता है।

बल्लूजी का अन्तखा द्वार पर बलिदान, सालुम्बा सरदार का दुर्ग की दीवारों पर प्राणदान, चन्दा ठाकुर का उनकी मृत देह को गठरी में बांध और पीठ पर लादकर लड़ते रहना, उस समय के दुर्ग के अधिकारी कुन्तों का आमोद-प्रमोद में पड़े होकर शतरंज के खेल में व्यस्त रहना आदि नाटक की प्रमुख घटनायें ऐतिहासिक हैं। शेष काल्पनिक हैं। ये काल्पनिक घटनायें भी उस समय की वीर नारियों की वीरता का निदर्शन हैं।

बल्लूजी के जीवन की इस वीरोचित घटना को इन दृश्यों द्वारा पाठकों के सन्मुख रखते मुझे अपार हर्ष हो रहा है। इससे यदि उनको कुछ भी सन्तुष्टि हुई तो तो मैं इस प्रयास को सफल समझूंगा।

१-६-१९४६, सन्त गोकलचन्द्र

रण में अनेकों वीर खेत आते रहे हैं, किन्तु उनके सामने जहां मरने का भय होता है, वहां मारने की आशा भी होती है। इसीआशा को लिये वे रणांगण में कूदते हैं। परन्तु कौन मनुष्य सामने खड़ी अवश्यंभावी भयंकर मृत्यु का इस प्रकार जान-बूझ कर सदर्प आलिंगन करता है! वल्लजी ही ऐसे थे जिन्होंने यह किया। उनकी वह हिम्मत और बलिदान हमारे नवयुवकों के जीवन का आदर्श होना चाहिये। जिस देश और जाति को इस प्रकार के रत्न अलंकृत करते हैं, उसका नाम संसार भर में अमर रहता है।

वल्लजी का अन्तल्ला द्वार पर बलिदान, सालुम्बा सरदार का दुर्ग की दीवारों पर प्राणदान, चन्दा ठाकुर का उनकी मृत देह को गठरी में बाँध और पीठ पर लादकर लड़ते रहना, उस समय के दुर्ग के अधिकारी मुगलों का आमोद-प्रमोद में पड़े होकर शतरंज के खेल में व्यस्त रहना आदि नाटक की प्रमुख घटनायें ऐतिहासिक हैं। शेष काल्पनिक हैं। ये काल्पनिक घटनायें भी उस समय की वीर नारियों की वीरता का निदर्शन हैं।

वल्लजी के जीवन की इस वीरोचित घटना को इन दृश्यों द्वारा पाठकों के सम्मुख रखते मुझे अपार हर्ष हो रहा है। इससे यदि उनकी कुछ भी सन्तुष्टि हुई हो तो मैं इस प्रयास को सफल समझूंगा।

१–९–१९४६,

सन्त गोकलचन्द्र

पहला अङ्क

पहला दृश्य

(स्थान—उदयपुर, मेवाड़)। राजदरबार का एक विशाल कमरा। कमरे के मध्य में कुछ ऊँचाई पर एक सुन्दर सुवर्ण-सिंहासन है। उस पर राणा अमरसिंह विराजमान हैं। सिंहासन के ठीक ऊपर लिरई कामका एक चंदोवा टंगा है। आस पास दो सेवक, सुन्दर वेषभूषा से सुसज्जित चँवर डुला रहे हैं। फर्श पर दो चोबदार सुवर्णनिर्मित चोबें लिए खड़े हैं। सिंहासन के दोनों ओर फर्श पर सुन्दर चौकियाँ धरी हैं। उन पर राजमन्त्री, सालुम्बा सरदार, मेहता, योध और कई अन्य उच्च सरदार आदि यथा-पद बैठे हैं।)

एक सरदार—अन्नदाता, आपको स्मरण ही होगा कि इसी मास में आपका अभिषेक हुआ था।

दूसरा सरदार—निस्सन्देह, यही मुकुट तब आपके भाल पर सुशोभित किया गया था।

दिन की प्रतीक्षा कर रहे होंगे। परिचय दीजिये महाराज, कि आपकी धमनियों में महाराणा का रक्त जोश से उछल रहा है, आप भी उनकी तरह चित्तौड़ की स्वतन्त्रता के लिये छटपटा रहे हैं।

अमरसिंह—वत्स भैया, तुम जो कुछ कह रहे हो यथार्थ है, और रणभेरी की आवाज सुनने को मैं भी लालायित हूँ, पर इसका समय भी तो आना चाहिये!

सालुम्बा सरदार—महाराज, आप कह क्या रहे हैं? क्या महाराणा कभी समय की प्रतीक्षा करते थे? क्या मृगराज केसरी को भी कहीं मृगया के लिये समय पूछना पड़ता है? क्या विद्युत को कभी गर्जन से समस्त भूमण्डल को ध्वनित करने के लिए समय की प्रतीक्षा करनी पड़ती है? किसने देखा या सुना है कि गगनचुम्बी महीरुहों को धराशायी करने वाले झंझानिल के लिए कोई विशेष समय नियत है? भूकम्प से पूछो, वह कब सूर्य पूछ कर आता है? समय का ढोंग रचना तो, मन की भीरुता को छुपाने का एक आवरण है। सच तो यह है कि समय वीरों का दास होता है, वीर समय के दास नहीं होते।

(दौवारिक आता है)

दौवारिक—(अभिवादन कर) महाराज, द्वार पर दो राजपूत प्रवेश चाहते हैं। उनमें से एक अपना नाम चित्तौड़ के ... सिंह बताते हैं।

राणा—सागरसिंह और चित्तौड़ के ! कहीं काका जी तो नहीं हैं

एक दरबारी—वे कहां आये होंगे !

मातुम्वा सरदार—उन्हें यहां क्या काम ! (व्यंग से) वे बादशाह जहांगीर की छत्रछाया से इतने शीघ्र ऊब गये हैं

राणा—(द्वारपाल से) उन्हें ले आओ।

(द्वारपाल जाता है)

राणा—यदि ये काका जी ही हों तो इनके यहां आने का क्या आशय हो सकता है ?

देवकसिंह—मुझे तो प्रतीत होता है कि बादशाह जहांगीर से कुछ मनमुटाव हो गया होगा।

(द्वारपाल दो राजपूतों के साथ प्रवेश करता है। उनमें एक कुछ बड़ी उम्र का उच्चकुलोत्पन्न प्रतीत होता है और दूसरा अधेड़ उम्र का उसका सहचर। दोनों राणा अमरसिंह को अभिवादन करते हैं।)

अमरसिंह—(देखते ही, आश्चर्य से कुछ ठहरकर) जुहार काका जी, बैठिये (दोनों सर्द्दारों के निकट आसनों पर बैठ जाते हैं। सब दरबारी चकित होकर एक दूसरे का मुँह ताकने लगते हैं।) काकाजी आपके आकस्मिक आगमन ने मुझे आश्चर्य में डाल दिया है। पहले कुछ सूचना तो दी होती ? कहिए इस कष्ट का कारण ?

सागरसिंह—(व्यंग से) क्या धन-धान्य-सम्पन्न चित्तौड़ के स्वर्ग वातावरण में कुछ कष्ट प्रतीत होने लगा है राणा जी के

जो हमारे निर्धन और दीन मेवाड़ को कृतार्थ किया है ?

देवलसिंह—अपने स्वामी सम्राट जहाँगीर से कुछ अनबन हो गई होगी। इसीलिए अपने पैत्रिक स्थान की याद आई है।

बल्लजी—काका जी, महावत खाँ को भी साथ लेते आते ! उस बेचारे को अकेला क्यों छोड़ आये हैं ? (सब हँसते हैं)

राणा—बल्ल भैया, काका जी हमारे पूज्य हैं।

बल्लजी—इसी कारण तो क्रोधानल की धधकती ज्वाला को हृदय में ही दबाये बैठा हूँ।

दूसरा सरदार—महावत खाँ को वहां क्या कष्ट होता होगा, सम्राट के जातीयों में से जो हुआ।

तीसरा सरदार—यह बात नहीं, स्वर्गीय महाराणा की प्रेतात्मा की धिक्कारें इन्हें नींद न लेने देती होंगी।

सागरसिंह—उनकी प्रेतामात्मा की धिक्कारें नहीं, अपनी अन्तरात्मा की धिक्कारें मुझे नींद नहीं लेने देती थीं।

साम्लुवा सरदार—(कुद्ध क्रोध से) फिर उस कलुषित आत्मा की शुद्धि के लिये क्या यहां पर गंगा बह रही है ?

राणा अमरसिंह—चूड़ावत जी, काका जी हमारे अतिथि हैं ? अतिथिधर्म का उल्लंघन न कीजिये।

सागरसिंह—इन्हें धिक्कारने दीजिये मुझे महाराज, मैं इसके ही योग्य हूँ। इन धिक्कारों से मेरी आत्मा को शान्ति मिलती है। (आँखों से आंसू निकल आते हैं)

राणा—बात क्या है काकाजी ? मालूम होता है आपके

जो हमारे निर्धन और दीन मेवाड़ को कृतार्थ किया है?

देवलसिंह—अपने स्वामी सम्राट जहाँगीर से कुछ अनबन हो गई होगी। इसीलिए अपने पैत्रिक स्थान की याद आई है।

बल्लूजी—काका जी, महावत खाँ को भी साथ लेते आते! उस बेचारे को अकेला क्यों छोड़ आये हैं? (सब हँसते हैं)

राणा—बल्लू भैया, काका जी हमारे पूज्य हैं।

बल्लूजी—इसी कारण तो मेवाड़ानल की धधकती ज्वाला को हृदय में ही दबाये बैठा हूँ।

दूसरा सरदार—महावत खाँ को यहां क्या कष्ट होता होगा, सम्राट के चातीयों ने से जो हुआ।

तीसरा सरदार—यह बात नहीं, स्वर्गीय महाराणा की प्रेतात्मा की धिक्कारें इन्हें नींद न लेने देती होंगी।

सागरसिंह—उनकी प्रेतात्मा की धिक्कारें नहीं, अपनी अन्तरात्मा की धिक्कारें मुझे नींद नहीं लेने देती थी।

सान्लुवा सरदार—(कुछ क्रोध से) फिर उस कलुषित आत्मा की शुद्धि के लिये क्या यहां पर गंगा बह रही है?

राणा अमरसिंह—चूड़ावत जी, काका जी हमारे अतिथि हैं? अतिथिधर्म का उल्लंघन न कीजिये।

सागरसिंह—इन्हें धिक्कारने दीजिये मुझे महाराज, मैं इसके ही योग्य हूँ। इन धिक्कारों से मेरी आत्मा को शान्ति मिलती है। (आँखों से आंसू निकल आते हैं)

राणा—बात क्या है काकाजी? मालूम होता है आपके

चित्त को कोई बड़ा आघात लगा है।

(सागरसिंह कुछ कहने को उद्यत होता है, परन्तु आंसुओं से अवरुद्ध कण्ठ के कारण कुछ बोल नहीं सकता।)

दूसरा राजपूत—महाराज, इस दशा में राणा जी कुछ न कह सकेंगे मैं ही श्रीचरणों में कुछ निवेदन करूं ?

राणा—हाँ हाँ ! आप ही कहिये।

दूसरा राजपूत—महाराज, बादशाह अकबर की मृत्यु के बाद उसके बेटे जहांगीर ने राणा सागरसिंह को चित्तौड़ के सिंहासन पर अभिषिक्त किया था। इसका आशय यह था कि इससे राजपूत प्रजा सन्तुष्ट हो जायेगी और मेवाड़ का बल भी क्षीण हो जायेगा। परन्तु हुआ वैसा नहीं।

एक सरदार—सब राजपूत राणा सागरसिंह नहीं हैं।

दूसरा राजपूत—परिणाम बिल्कुल विपरीत हुआ। जनता उनसे घृणा करने लगी। कोई भी चित्तौड़निवासी उन्हें मिलने तक न आता।

एक सरदार—यही तो राजपूती शान है।

दूसरा राजपूत—इससे राणाजी को सदा मानसिक कष्ट रहता। इधर राजपूत जनता का यह रुख था, उधर बादशाह की भी उन पर सन्दिग्ध दृष्टि रहती। स्वतन्त्रता से वञ्चित कर उन्हें वे कठपुतली बनाये रखने का यत्न करते रहते।

[illegible] सरदार—इसीलिये तो परतन्त्रता को अपमान माना गया है

इनमें न मानसिक सुख है और न शारीरिक ही।

दूसरा राजपूत—ऐसी परिस्थिति में राणा जी की दशा विक्षिप्तों की सी हो गई। चित्तौड़ के पूर्वाधिकारी पूर्वजों की याद जब उन्हें आती तो आठ आठ आँसू रोने लगते। दिन को उदासी रहती, रात को नींद न आती। कई बार रात को महल की छत पर बैठे चित्तौड़ के गौरवस्तम्भों को देखकर रोते रोते सारी की सारी रात वहीं गुज़ार देते।

सागरसिंह—महाराज, इसके आगे मैं स्वयं सुनाता हूँ। अब मेरी दशा कहने के योग्य हो गई है। रात को मैं जिधर ही आँख उठाकर देखता, उधर ही मेरे पूर्वजों वप्पारावल, राणा संग्रामसिंह और स्वर्गीय महाराणा प्रताप की क्रोध-युक्त लाल-लाल आँखें मुझे दिखाई देतीं। मैं उसी दम घबरा कर आँखें बंदकर लेता। एक दिन की घटना है। मैं रात को सोया पड़ा था। अकस्मात् एक भीषण नाद हुआ। मैंने देखा सामने भैरव की भयावह मूर्ति एक हाथ में खाँडा और दूसरे में रुधिराक्त मनुष्यमुंड को पकड़े मेरे सामने खड़ी है। मुझे सम्बोधन कर उसने कहा—'दुष्ट राजपूताधम, यहां से चला जा।' उसी समय मेरी आँख खुल गई। अर्धरात्रि का समय था। शेष आधी रात मैंने कैसे मानसिक कष्ट में गुज़ारी, यह मैं ही जानता हूँ। प्रातः होते ही मैं अपने विश्वासी इस मित्र

चित्त को कोई बड़ा आघात लगा है।

(सागरसिंह कुछ कहने को उद्यत होता है, परन्तु अश्रुओं में अवरुद्ध कण्ठ के कारण कुछ बोल नहीं सकता।)

दूसरा राजपूत—महाराज, इस दशा में राणा जी कुछ न कह सकेंगे मैं ही श्रीचरणों में कुछ निवेदन करूं ?

राणा—हाँ हाँ ! आप ही कहिये।

दूसरा राजपूत—महाराज, बादशाह अकबर की मृत्यु के बाद उनके बेटे जहांगीर ने राणा सागरसिंह को चित्तौड़ के सिंहासन पर अभिषिक्त किया था। इसका आशय यह था कि इससे राजपूत प्रजा सन्तुष्ट हो जायेगी और मेवाड़ का बल भी क्षीण हो जायेगा। परन्तु हुआ वैसा नहीं।

एक सरदार—सब राजपूत राणा सागरसिंह नहीं हैं।

दूसरा राजपूत—परिणाम बिल्कुल विपरीत हुआ। जनता इनसे घृणा करने लगी। कोई भी चित्तौड़निवासी इन्हें मिलने तक न आता।

एक सरदार—यही तो राजपूती शान है।

दूसरा राजपूत—इससे राणाजी को सदा मानसिक कष्ट रहता। इधर राजपूत जनता का यह रुख था, उधर बादशाह की भी उन पर सन्दिग्ध दृष्टि रहती। स्वतन्त्रता से वञ्चित कर इन्हें वे कठपुतली बनाये रखने का यत्न करते रहते।

सालुम्बा सरदार—इसीलिये तो परतन्त्रता को जघन्य माना गया है

रामसिंह—(सामने देखकर) लो, बल्लूजी भी आ रहे हैं, उनसे
(बल्लू जी आते हैं) ।

बल्लूजी—(उन्हें देखकर) यह क्या काना-फूसी हो रही है ? (वे उन्हें प्रणाम करते हैं ।)

हरिसिंह—रामसिंह जी राणा जी को चित्तौड़ पाने पर बधाई देने जा रहे हैं।

बल्लूजी—अपना अपना विचार है। हम लोग तो यह समझते हैं कि इस लाभ से मेवाड़-गौरव का अपमान हुआ है।

रामसिंह—अपमान कैसा ! कोई भीख थोड़े मांगी है। मालदेवजी हमारे अपने हैं···

बल्लूजी—अपने कैसे ! सूखी लकड़ी यदि कुल्हाड़े से मिल जाती है, तो वह भी कुल्हाड़ा कहलाती है। (आवेश में) तुम्हें क्या नहीं रामसिंहजी, स्वर्गीय महाराणाजी क्यों आजीवन जंगलों की खाक छानते रहे ? क्यों भूख और प्यास से तड़पते बच्चों की बिलबिलाहट देखकर भी आँखों के आंसू पोंछते रहे, पर शत्रु के आगे उन्होंने हाथ नहीं पसारा। क्या 'अकबर' इन दो अक्षरों के उच्चारणमात्र से ही वे राज्य और धन-सम्पत्ति के सुख को नहीं पा सकते थे ? बात यह थी कि उनमें देशभक्ति, आत्म-अभिमान और जातीय गौरव की मात्रा इन लोगों से कहीं अधिक थी।

रामसिंह—अपना अपना विचार है बल्लूजी, मैं तो यही समझता हूं कि काम वह करना चाहिये जिससे सांप भी मरे और लाठी भी न टूटे।

बल्लूजी—हाँ ठीक है! तुम बातों का प्रयोग ही न करो तो मद टूटे कैसे?

मानसिंह—(क्रोध से) उनके प्रयोग का अवसर भी आपको जल्दी मिल जायगा। चित्तौड़ के हाथों से निकल जाने से जहाँगीर बादशाह मौन थोड़े बैठा रहेगा।

बल्लूजी—यह तो अति शुभ समाचार है। राजपूत तो सदा ऐसे दिन की प्रतीक्षा में रहते हैं कि कब उन्हें मातृभूमि के चरणों में बलि चढ़ाने का अवसर मिले। और उस शुभ अवसर पर वह प्राणों को हथेली पर रखे सबसे आगे होगा।

मानसिंह—ये सब बातें हैं।

बल्लूजी—बातें! बल्लूजी की भुजा में शक्ति है, जिह्वा में नहीं। हमारा नाता उस देश से है जिसका 'प्राण जायँ पर वचन न जाई' आदर्श रहा है।

(बातें करते करते जाते हैं)

परदा उठता है।

तीसरा दृश्य

(स्थान—चित्तौड़, राजमहल। समय—प्रभात। सुसज्जित शयनागार, एक पलंग पर राणा अमरसिंह और पास ही दूसरे पलंग पर महारानी लेटी हुई हैं।)

राणा—(निद्रित अवस्था में कुछ बड़बड़ाते हुए) न...हीं, न...हीं, मे...रा कोई अप...रा...ध। पि...ता जी, क्ष...मा।

रानी—(सहसा चौंक कर) महाराज ! महाराज !!

राणा—(उसी तरह बड़बड़ाते हुए) आप...की आ...ज्ञा...पाल...

रानी—(चारपाई से उठकर महाराणा को जगाती है) महाराज, क्या बात है ! किससे बातें कर रहे हैं आप ! कौन था वह !

राणा—(उठकर बैठ जाते हैं, पर उनकी दशा विक्षिप्तोंकी-सी है) है ! क्या कहा ? क्या है ? कौन थे वे ? वे ही तो थे, थे नहीं, हैं, सामने खड़े हैं पिता जी।

रानी—(विस्मय से) कहाँ हैं वे ?

राणा—(स्वस्थ होकर) चले गये क्या ?

रानी—क्या कह रहे हैं आप ? क्या आपने स्वप्न देखा है ?

राणा—(घबराये हुए) स्वप्न था क्या ? स्वप्न ही होगा, पर... (चुप हो जाते हैं)।

रानी—चुप क्यों होगये महाराज ? पर... ?

राणा—पर ऐसे प्रतीत हुआ था जैसे पिता साक्षात् खड़े हैं और...

रानी—और क्या ?

राणा—ज़रा ठहरो महारानी, अभी सुनाता हूँ। ज़रा स्वस्थ होने दो। (कुछ देर बाद)······और मेरी ओर घूर घूर कर देख रहे थे। (जैसे अपने आप) वे ही थे, निस्सन्देह, वे ही थे। वही था उनका तेजस्वी भाल, वे ही थीं उनकी आजानुलम्बी भुजायें, वही था उनका विशाल वक्षःस्थल, बिलकुल वही थे। [illegible] आँखों से उनकी आग की [illegible] मुझे [illegible] करने को थी।

ध्यान देने की आवश्यकता नहीं। जाग्रत अवस्था में जिन वस्तुओं का ध्यान रहता है स्वप्नावस्था में भी उन्हीं के चित्र आँखों के सामने से होकर निकला करते हैं। पलभर में मनुष्य स्वर्ग से लेकर पाताल तक घूम आता है।

राजा—मेरा भी यही विचार है।

रानी—यही बात है। आप चिन्ता न करें। हाँ, पुरोहित जी से पूछ-ताछ कर इसका कुछ उपचार करा देना चाहिए।

राजा—यही होगा। (फिर दोनों चले जाते हैं)

परदा गिरता है

चौथा दृश्य

(चित्तौड़, स्थान—बाज़ार की एक चौड़ी सड़क, कई लोग आ जा रहे हैं। सड़क के दोनों ओरों से दो राजपूत आते दिखाई देते हैं।)

एक राजपूत—विजयसिंह, कहाँ जा रहे हो? (उसकी ओर गौर से देखकर) आप इतने घबराये से क्यों हैं?

दूसरा राजपूत—(बहुत धीरे से) देवसिंह, क्या आपने सुना? अभी समाचार मिला है कि बादशाह जहाँगीर ने मेवाड़ पर आक्रमण करने का पक्का विचार कर लिया है।

विजयसिंह—यह बात है! फिर तुम कहाँ जा रहे हो?

देवसिंह—सालुम्बा सरदार की ओर से यह समाचार दाऊजी को पहुँचाने जा रहा हूँ। साथ ही उन्होंने दाऊजी से पूछा है कि इस परिस्थिति में क्या करना चाहिए।

विजयसिंह—वे बेचारे क्या कर सकते हैं? राणाजी की आज कल जो दशा है वह किसी से छिपी नहीं है। जब से चित्तौड़

मिला है सब दिन आमोद-प्रमोद में ही डूबे रहते हैं। इनके लेखे, मेवाड़ डूबे या तरे।

देवीसिंह—बात तो तुम्हारी ठीक है! पर क्या, चूड़ावत सरदार और उनके जैसे वीर मेवाड़ को पददलित होता देख सकेंगे? मैंने तो सुना है कि यदि राणा जी के आदेश की अवहेलना भी करनी पड़ी तो भी वे वीर मेवाड़ की रक्षा का भार अपने ही कन्धों पर लेने को उद्यत हैं।

शिवसिंह—बात है भी ठीक। जिस मातृभूमि मेवाड़ की रक्षा के लिये सीसोदियों के रक्त की नदियाँ बह चुकी हैं, जिसकी झोपड़ी से लेकर उच्च अट्टालिकाओं की प्रत्येक ईंट में वीर राजपूतों के बलिदानों की कथायें मूक भाषा में लिखी हुई हैं, जिसकी सेवा में बप्पारावल से लेकर महाराणा प्रताप तक बहादुर राजपूतों ने अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया है, उसे क्या एक कुलकलंक की उपेक्षा के कारण कोई भी मेवाड़ी मुगलों से पददलित होते देख भी सकेगा?

देवीसिंह—मालूम तो यह होता है कि किसी भी वीर का इशारा पाते ही राजपूत-वीरता का सागर एक ही साथ उमड़ने लगेगा।

शिवसिंह—होना भी यही चाहिए। अच्छा भैया, अब मुझे जाना चाहिए, देर न हो जाय।

देवीसिंह—अच्छा, जाओ। मैं भी एक आवश्यक कार्य से निबट कर सरदार से मिलूँगा।

(दोनों अपनी अपनी ओर जाते हैं)

(परदा उठता है)

ध्यान देने की आवश्यकता नहीं। जाग्रत अवस्था में जिन वस्तुओं का ध्यान रहता है स्वप्नावस्था में भी उन्हीं के चित्र आँखों के सामने से होकर निकला करते हैं। पलभर में मनुष्य स्वर्ग से लेकर पाताल तक घूम आता है।

राणा—मेरा भी यही विचार है।

रानी—यही बात है। आप चिन्ता न करें। हाँ, पुरोहित जी से पूछ-ताछ कर इसका कुछ उपचार करवा देना चाहिए।

राणा—यही होगा। (फिर दोनों सो जाते हैं)

परदा गिरता है

चौथा दृश्य

(चित्तौड़, स्थान—बाज़ार की एक चौड़ी सड़क, कई लोग आ जा रहे हैं। सड़क के दोनों ओरों से दो राजपूत आते दिखाई देते हैं।)

एक राजपूत—विजयसिंह, कहाँ जा रहे हो? (उसकी ओर ग़ौर से देखकर) आप इतने घबराये से क्यों हैं?

दूसरा राजपूत—(बहुत धीरे से) देवीसिंह, क्या आपने सुना? अभी समाचार मिला है कि बादशाह जहाँगीर ने मेवाड़ पर आक्रमण करने का पक्का विचार कर लिया है।

विजयसिंह—यह बात है! फिर तुम कहाँ जा रहे हो?

देवीसिंह—मातुल्ला सरदार की ओर से यह समाचार यज्ञजी को पहुँचाने जा रहा हूँ। साथ ही उन्होंने यज्ञजी से पूछा है कि इस परिस्थिति में क्या करना चाहिए।

विजयसिंह—वे बेचारे क्या कर सकेंगे? राणाजी की आज कल जो दशा है वह किसी से छिपी नहीं है। जब से चित्तौड़

मिला है रात दिन आमोद-प्रमोद में ही डूबे रहते हैं। इन्हें क्या, मेवाड़ डूबे या तरे।

देवीसिंह—बात तो तुम्हारी ठीक है ! पर क्या चूड़ावत सरदार और बल्लू जैसे वीर मेवाड़ का पददलित होना देख सकेंगे ? मैंने तो सुना है कि यदि राणा जी के आदेश की अवधीरणा भी करनी पड़ी तो भी ये वीर मेवाड़ की रक्षा का भार अपने ही कन्धों पर लेने को उद्यत हैं।

विजयसिंह—बात है भी ठीक। जिस मातृभूमि मेवाड़ की रक्षा के लिये सीसोदियों के रक्त की नदियाँ बह चुकी हैं, जिसकी झोंपड़ी से लेकर उच्च अट्टालिकाओं की प्रत्येक ईंट में वीर राजपूतों के बलिदानों की कथायें मूक भाषा में लिखी हुई हैं, जिसकी सेवा में बप्पारावल से लेकर महाराणा प्रताप तक महाबली राजपूतों ने अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया है, उसे क्या एक कुलकलंक की अयोग्यता के कारण कोई भी मेवाड़ी मुगलों से पददलित होते देख भी सकेगा ?

देवीसिंह—मालूम तो यह होता है कि किसी भी वीर का इशारा पाते ही राजपूत-वीरता का सागर एक ही साथ उमड़ने लगेगा।

विजयसिंह—होना भी यही चाहिए। अच्छा भैया, अब मुझे जाना चाहिए, देर न हो जाय।

देवीसिंह—अच्छा, जाओ, मैं भी एक आवश्यक कार्य से निपट कर सरदार को मिलूंगा।

(दोनों अपनी अपनी ओर जाते हैं)

(परदा उठता है)

पाँचवाँ दृश्य

(चित्तौड़, स्थान—राजमहल का एक विशाल कमरा जिसमें आमोद प्रमोद की सब सामग्री विद्यमान है। दीवारों पर सुन्दर चित्र टंगे हुए हैं। प्रत्येक खिड़की का द्वार कामदार रेशमी परदों से सुसज्जित है, स्वर्ण के पात्रों में भरे हुए सुगन्धयुक्त पदार्थों के सुवास से सारा भवन महक रहा है। फर्श पर बहुमूल्य ग़लीचे बिछे हैं। छतों के साथ रंगबिरंगे झाड़-फानूस और कंदीलें लटक रही हैं। एक बहुमूल्य मणिजटित चौकी पर राणा अमरसिंह बैठे हैं। उनकी दोनों ओर कुछ राजपूत बैठे हैं।)

राणा—तो यह समाचार सत्य ही समझना चाहिए?

करणसिंह—हाँ, सरकार! सत्य ही है। मुझे जयसिंह ने बताया है।

राणा—जयसिंह को किसने बताया है?

करणसिंह—इसका तो मुझे ज्ञान नहीं।

रामसिंह—यह सारी की सारी बात मिथ्या है सरकार। यह सब आप के शत्रुओं की चाल है।

मेघसिंह—यही बात होगी सरकार, वे लोग कब चाहते हैं कि आपके जीवन के शेष दिन कुछ आराम से कटें!

रामसिंह—यदि इसमें कुछ सचाई भी हो तो भी महाराज, जहाँ तक हो सके युद्ध से पीछा छुड़ाना ही चाहिये।

पाँचवाँ दृश्य

(चित्तौड़, स्थान—राजमहल का एक विशाल कमरा जिसमें आमोद प्रमोद की सब सामग्री विद्यमान है। दीवालों पर सुन्दर चित्र टंगे हुए हैं। प्रत्येक खिड़की का द्वार कामदार रेशमी पर्दों से सुसज्जित है, स्वर्ण के पात्रों में भरे हुए सुगन्धयुक्त पदार्थों के सुवास से सारा भवन महक रहा है। फर्श पर बहुमूल्य गलीचे बिछे हैं। छतों के साथ रंगबिरंगे फानूस और कंदीलें लटक रही हैं। एक बहुमूल्य मणिजटित चौकी पर राजा रत्नसिंह बैठे हैं। उनकी दोनों ओर कुछ राजपूत बैठे हैं।)

राजा—तो यह समाचार सत्य ही समझना चाहिए?

कर्णसिंह—हाँ, सरकार! सत्य ही है। मुझे अर्जुनसिंह ने बताया है।

राजा—अर्जुनसिंह को किसने बताया है?

कर्णसिंह—इसका तो मुझे ज्ञान नहीं।

मानसिंह—यह सारी की सारी बात मिथ्या है सरकार। यह सब आप के शत्रुओं की चाल है।

भीमसिंह—यही बात होगी सरकार, वे लोग कब चाहते हैं कि आपके जीवन के दो दिन कुछ आराम से कटें!

रत्नसिंह—यदि इसमें कुछ सचाई भी हो तो भी महाराज, क्यों न हो सके युद्ध से पीछा छुड़ाना ही चाहिये।

वल्लजी—महाराज, देश के शत्रु आपके सामने खड़े हैं और आप झूठे खुशामदियों के बीच बैठे निर्वीर्य नामर्दों की तरह समय गँवा रहे हैं !

राणा—(कुछ आवेश में आकर) वल्लजी, आपने सत्य कहा है, मैं आपके साथ हूँ। कहो क्या·······

रामसिंह—महाराज, आपने यह भी क्या सोचा है कि इस युद्ध से मेवाड़ की क्या दशा होगी ! अभी तो पुराने घाव भी नहीं भर पाये हैं। मुगल सम्राट् के लाखों सैनिकों के सामने आपके मुट्ठी भर सैनिक क्या कर सकेंगे !

राणा—आपकी बात भी सची है रामसिंह ! सम्राट् की असीम शक्ति के सामने हम ठहर नहीं सकेंगे। इसलिए ·····

सालुम्बा सरदार—महाराज, आज आप मोम की नाक से क्यों बन गये हैं ! जिधर ये देशद्रोही लोग आपको मोड़ते हैं आप उधर ही मुड़ जाते हैं।

वल्लजी—महाराज, इधर आप सम्राट की दासता स्वीकार कर उसकी छत्रछाया में पड़े इन कुलाङ्गारों के साथ गुलछर्रे उड़ाते होंगे, और उधर वे लोग आपके राज्य की ऐसी दुर्दशा करेंगे जिसका आप अनुभव भी नहीं कर सकते।

योध—आपकी राजपूत प्रजा को तंग करेंगे, राजपूत सतियों का सतीत्व भ्रष्ट करेंगे, देवमन्दिरों को भूमिसात करेंगे और आप देखते ही रह जायेंगे। और आपके ये साथी कुछ भी न कर सकेंगे।

वल्लजी-महाराज, आपकी तरह हम लोगों में भी सीसोदीय रक्त है और मैं सबके सामने उच्चस्वर से यह कहता हूँ कि यदि

मेवाड़ का वर्तमान राणा भीरुतावश मेवाड़ की रक्षा से विमुख होकर अपना कर्तव्य भूल गया तो मातृभूमि की रक्षा के लिए हम लोग ही—चन्द्रावत और शक्तावत, प्राण समर्पण करेंगे, परन्तु मुगल सम्राट् से सन्धि न करेंगे।
(सब राजपूतों की आंखें क्रोध से लाल हो जाती हैं)

राणा—यज्ञजी, आप हमारे पूज्य चाचा शक्तिसिंह के सुपुत्र हैं मेवाड़ जैसे मेरा है वैसे आपका भी है। मैं आपका सा देने को·······

कर्णसिंह—राणा जी, आप साथ देने को तो उद्यत हैं, परन्तु·····

राणा—परन्तु·······(कुछ सोचकर) यह भी देखना है, कि विज की कुछ आशा भी है।

(बल्लजी का मुख क्रोध से लाल हो जाता है। उनकी आंखों चिनगारियां निकलने लगती हैं। सारा शरीर कांपने लगता है।)

सलुम्बा सरदार—धिक्कार है आपको राणा जी! क्या आज राजपूत विजय की आशा से रणांगण में कूदते रहे हैं क्या स्वर्गीय महाराज जी के जीवन से आपने यही गाथा है? (कोष के सर्पोश में बाव पड़ी हुई एक बी की कुछ को उठाकर उसके सामने रखे हुए बालू को मा करते हैं। बालू अकस्मात् हो जाता है। और उसी

सरदारो, तैयार हो जाओ (म्यान से तलवार निकालकर) और जल्दी रणभूमि को प्रस्थान करके राणा को इस कलंक से बचाओ।

रामसिंह, हरिसिंह—क्या आप में से कोई भी इन राजद्रोहियों को रोकने का साहस नहीं करेगा!

चल्लजी—राजद्रोही हम हैं या तुम, जो मित्रता की ओट में राणा को कालिमा के गर्त में गिरा रहे हो!

(परदा गिरता है)

छठा दृश्य

(स्थान—चित्तौड़ के पास एक रम्य उद्यान में देवमन्दिर, पर वहां कोई व्यक्ति नहीं। केवल राणा अमरसिंह उद्भ्रान्त की सी अवस्था में खड़े हैं।)

राणा—(अपने आप) बड़ी कठिनता से मैं यहां पहुँच पाया हूं। (क्रोध से) मेवाड़ के राणा की ऐसी दुर्दशा! मुझे खींच कर आसन से उठा दिया गया और मैं कुछ भी न कर सका। सब के सब मुँह ही देखते रह गये और कर घर कुछ न सके! उनकी ऐसी मजाल! मैं यदि इस अपमान का प्रतिशोध न करूं तो धिक्कार है मुझे! मैं मेवाड़ का राणा क्या हुआ, एक च्यूंटी हुआ, जो चाहे मुझे पद-दलित कर जाय और मैं चुप रहूं। यह नहीं होगा मैं इसी समय इसका बदला..........(इतना एक व्यक्ति मन्दिर के

पीछे से आता है। उसके शरीर पर केवल एक रेशमी धोती है जिसका एक छोर कंधों पर भी रक्खा है। माथे पर तिलक और गले में रुद्राक्ष-माला है। पाँवों में उसके खड़ाऊँ हैं।)

वह व्यक्ति—शान्त हूजिए मेवाड़ के भाग्य-विधाता !

राणा—कौन !

वह व्यक्ति—इसी मन्दिर का पुजारी।

राणा—तो आपने ....

पुजारी—व्यग्र न हूजिये महाराज ! मैंने आपकी बातें सुनी हैं !

राणा—सुनी हैं ?

पुजारी—सुनी हैं । इसी सम्बन्ध में एक ब्राह्मण के नाते आपसे कुछ कहने का अधिकार भी रखता हूँ।

राणा—क्या कहना चाहते हैं आप ?

पुजारी—यही कि मातुल्या सरदार और वल्लजी आदि राजपूतों ने जो भी कुछ किया है आपके हित के लिये किया है।

राणा—क्या मेरा अपमान भी ....

पुजारी—उन्होंने आपका अपमान नहीं किया है महाराज, बल्कि अपना कर्तव्य पालन किया है, भावी अपमान से चित्तौड़ाधिपति की रक्षा की है। जरा सोचें तो महाराज, जब किसी देश का शत्रु बवंडर की गति से उमड़ता चला आ रहा हो, और उस देश का अधिपति, जिसका कर्तव्य उसकी रक्षा करना हो, अपना कर्तव्य भूले आमोद-प्रमोद में व्यस्त पड़ा हो तो उस समय देशहितैषियों का क्या धर्म है ? जरा सोचिये तो, आपकी नसों में उनका रक्त है जिन्होंने जीवन

तक पुत्रों और राजवंशों में एक भी बालक विद्यमान
रहेगा तब तक वह देशपताका को कभी नीचा न होने देगा।

—मेवाड़ाधिपति की जय! राणाजी की जय!!

(परदा उठता है)

—:○:—

सातवाँ दृश्य

(चित्तौड़, स्थान—राजदरबार, कुछ दरबारी बैठे हैं।
राणा अमरसिंह और कुछ मन्त्री सलूम्बर सरदार,
चन्दा ठाकुर और दूसरे चूड़ावत सरदार
और दलपती, मोहन, भरजी, झबकेर
दिल्लू, भगवान आदि कुछ
शक्तावत सरदार आते हैं
और यथास्थान
बैठ जाते हैं।)

(दोनों पक्षों के सरदारों के पीछे उनके कुछ पारख आते हैं।)

रा—(चूड़ावत सरदार से) सरदार जी, कुछ पता चला है कि जहाँगीर की सेना कब कूच करने को है?

चूड़ावत सरदार—अन्नदाता, कल ही मुझे लौटे हुए एक दूत ने बताया है कि वे अभी तय्यार हो रहे हैं। वे चाहते हैं इस समय दोनों पुरानी पराजयों की लज्जा को मिटाना; इसलिए बहुत तय्यारी कर रहे हैं।

बन्दा ठाकुर—सुना गया है धर्मावतार, कि बादशाह इस समय
संचालन का भार अपने पुत्र परवेज को दे रहा है।

बल्लूजी—देता रहे हमें इससे सरोकार नहीं ! परवेज हो या
और हमने तो जो कोई आये उससे लोहा लेना है।
एक राजपूत हजार हजार मुगलों के समान है महाराज

राणा—इसमें क्या संदेह है बल्लू जी, जब तक मेवाड़ के
का भार शक्तावत और चूड़ावतों के कंधों पर है तब
इसे किसका भय ! साथ ही मैं देख रहा हूं कि इस स
हमारे सैनिकों और सेनाध्यक्षों का उत्साह-सागर
मार रहा है। अतः इस समय भी मुझे विजय की
आशा है।

योध—आपने सेना का हिरौल किसे सौंपने का विचार किय
सरकार ?

राणा—दो ही तो पक्ष हैं-चूड़ावत और शक्तावत ! जिसे ये
सर्वसम्मति से स्वीकार करेंगे उसे ही यह दिया जायगा

सालुम्बा सरदार—हिरौल का प्रश्न ही नहीं उठना चाहिए। उ
अधिकारी चूड़ावत हैं ही महाराज, अब तक उन्हें ही
मिलता रहा है।

योध—चूड़ावतों को ही यह सदा क्यों मिलता रहे ! मेवाड़
लिए शक्तावतों के बलिदान क्या

हुए हैं ? इस समय यह इन्हें क्यों न दिया जाय ?

सालुम्बा सरदार—यह कदापि न होगा । चूंडावत अपने अधिकार को कभी न छोड़ेंगे ।

बल्लूजी—यह भी कदापि न होगा । शक्तावत सदा चूंडावतों के पीछे नहीं रहना चाहते ।

(शक्तावतों के चारण अपने पक्ष का गौरव वर्णन करते हैं ।)

एक चारण—अमर कीर्ति बप्पा रावल की विश्वविदित है,
अजयसिंह नरसिंह किसी से नहि अविदित है ।
जिनके आगे बाबर का सिर झुका समर में,
जिनका प्रातः नाम लिया जाता घर घर में ।
वे भूषण मेवाड़ के स्वर्गीय संग्राम थे,
मातृभूमि के हित हुए अर्पित जिनके प्राण थे ॥

दूसरा चारण—छोड़ा जन्मस्थान आत्म-अभिमान न छोड़ा,
छोड़ा खान औ' पान तीर-संधान न छोड़ा ।
छोड़े तन से प्राण शत्रु-संग्राम न छोड़ा,
छोड़ा निज धन-धान देश का ध्यान न छोड़ा ।
शक्तावत गोलोकगत वे राणा परताप थे,
रिपु-सियार सुन भागते हुँकृत जिनके चाप के ॥

तीसरा चारण—असिपुत्रिका-धारा को अंगुलि पर परखा,
रुधिर-धार को देख देख जिनका चित हरखा ।
तजा यदपि चित्तौड़ विमुख भाई से होकर,
देखा आपद्ग्रस्त किया आलिंगन रो कर ।
शक्तावत कुलका प्रमुख शक्तिसिंह वह वीर था,
मातृभूमि बलिवेदि पर जिसने तजा शरीर था ॥

चौथा चारण—किनका रुधिर स्वातंत्र्यहित निज देशके बदला रहा !

किन का हृदय इसके लिए दुख-वेदना सहता रहा ?
ये कौन जो कर में लिये सिर को समर को भागते ?
यों देश की चिन्ता जिन्हें दिन रात सोते जागते ?
राजपूतों के दिन जिन्हें देशोन्नति का ध्यान है ?
राजपूतों के दिन जिन्हें निज देश का अभिमान है ?

(चूड़ावत पक्ष के चारण चूड़ावतों का गुण गौरव बताते हैं ।)

एक चारण—पितु आज्ञा सिर धार महल तज जंगल पाया,
दसकन्धर निर्दोष किया अपयुं के नसाया ।
आसुर दल दल दिया जगत् से त्रास मिटाया,
भारत भू को कर पुनीत सुरलोक बनाया ।
उन्हीं राम के वंशधर चूड़ावत ये वीर हैं,
जिनके गुण निस्सीम हैं, पांचाली के चीर हैं ॥

दूसरा चारण—मातृभूमि स्वातन्त्र्यहेत जिन खड्ग उठाया,
मुख से निकला एक बार जो वचन निभाया ।
लिया भीष्म अवतार मनों फिर भू में आकर,
जीवन किया व्यतीत सकल अविवाहित रह कर ।
नरपुङ्गव उस चंड के चूड़ावत संतान हैं,
सकल जगत् में व्याप्त है जिनकी कीर्ति महान है ॥

तीसरा चारण—अकबर ने जब पुण्य भूमि को आ घेरा था,
भीरु हृदय ने मातृभूमि से मुंह फेरा था ।
कर में ले करवाल कौन रण में थे अ—

किनसे हो भयभीत शत्रु रण से थे धाये।
जयमल, पुत्तू, महीदास चूड़ावत थे ये सभी,
रण में छोड़े प्राण पर नहीं जो छोड़ा कभी॥

चौथा चारण—इनके यश की ध्वजा गगन में फहराती है,
अब भी जो अरिदल-हृदयों को दहलाती है।
बलीभूत इनके तन पर चित्तौड़ खड़ा है,
जिसका हम सबको गौरव अभिमान बड़ा है।
अधिकारी हिरौले के चूड़ावत ही हैं सभी,
क्या मृगेन्द्र पद को कहीं जम्बुक पा सकते कभी!

राणा—(कुछ सोचता हुआ) आप लोगों ने मुझे बड़े असमंजस में डाल रक्खा है। चूड़ावत और शक्तावत मेवाड़ की दो आँखें हैं, दोनों मुझे एक सी प्रिय हैं। अब हिरौल···

सालुम्बा सरदार—(बीच में ही काटकर) हिरौल के प्रश्न का निर्णय पहले रणभूमि में होजाय। हममें से जो शेष रह जाय वही हिरौल पाने का अधिकारी हो।

बल्लजी—हमें सहर्ष स्वीकार है।

राणा—यह कदापि न होगा। इतने शक्तिसम्पन्न शत्रु का सामना करने से पूर्व अपनी शक्ति का ह्रास करना कहाँ की बुद्धिमानी है? यह तो ऐसे हुआ जैसे चलने की शक्ति आने से पूर्व ही मनुष्य पंगु बना दिया जाय।

मन्त्री—महाराज, यही तो हम लोगों में बुराई है। आपस में ही लड़ मर कर शत्रुओं को बल देते रहे हैं। खेद है कि

महाभारत के गृहकलह से भी हमने कोई शिक्षा नहीं ली।

राणा—मन्त्री जी, आपका कहना यथार्थ है. परन्तु आप सालुम्बा सरदार और वल्लजी को जानते ही हैं। दोनों ही अपनी धुन के पक्के हैं। इस समस्या का किसी न किसी तरह सुलझाव होना चाहिये। पर इसे सुलझाया कैसे जाय?

एक सरदार—महाराज, मुझे एक सूझ सूझी है।

राणा—कौन सी!

सरदार—चित्तौड़ के इरद गिरद के प्रायः सब दुर्ग हमारे हस्तगत हो चुके हैं, एक अन्तला दुर्ग ही आज तक स्वतन्त्र खड़ा है, क्यों कि उसे अभेद्य और दुष्प्राप्य समझ कर हमने अभी तक नहीं लिया है। मेरा कहना है कि चूड़ावतों और शक्तावतों में से जो भी उसमें प्रथम प्रवेश करे वही हिरौल का अधिकारी माना जाय।

(चूड़ावत और शक्तावत एक ही समय—हमें स्वीकार है, हमें स्वीकार है)

राणा—आपकी सूझ तो बहुत उत्तम है नरसिंह जी। अन्तला को किसी दिन लेना ही है, फिर मुगलों के आक्रमण से पहले ही क्यों न लिया जाय। इसमें एक तो आपस में लड़कर हमारी शक्ति का व्यर्थ नाश न होगा, दूसरे, इन दोनों के विवाद का भी निर्णय हो जायगा। तीसरे, अन्तला की शक्ति से शत्रु को कोई लाभ न पहुँच सकेगा। (कुछ देर कर कुछ सोचने लगते हैं। अकस्मात्) मुझे स्मरण आगया। अब भेद खुला है स्वप्न का।

चूड़ावत—स्वप्न कैसा?

राणा—कुछ दिन हुए स्वर्गीय पिता जी स्वप्न में आये थे। वे अन्तला के विषय में कुछ कहने को ही थे कि मेरी नींद टूट गई। अवश्य वे हमें अन्तला के लेने को कहने वाले थे। मुझे बड़ा हर्ष है कि इस निर्णय में पिताजी की आज्ञा का भी हाथ है।

(सब के सब 'महाराणा प्रतापसिंह की जय !' कहते हैं)

(परदा गिरता है)

आठवाँ दृश्य

(स्थान—चित्तौड़ के पास एक सुन्दर वन, उसमें तरह तरह के फूल उगे हुए हैं। पास ही एक देवमन्दिर है। एक राजपूत ललना सोत्कण्ठ नेत्रों से इधर उधर देखती हुई आती है।)

ललना—अभी तक नहीं आई। रोज तो अब तक आजाया करती थी। कहीं बिना भेंट किये ही न जाना पड़े। फिर कदाचित् समागम हो या न हो।

(पीछे से कुछ शब्द सुनाई देता है)

यह आरही है, उसी की पैजनियों का यह शब्द है। (कुछ सुना कर, बिना पीछे देखे) मैं तुम्हें ऐसा दण्ड दूंगी आज कि जन्म भर याद रक्खोगी। फिर किसी को कभी प्रतीक्षा में न रक्खोगी। कब की तुम्हारी बाट जोह रही हूं कि बस (पीछे से आवाज़ आती है—बाँ, बाँ, बाँ, मुड़कर देखती है। कुछ हंस कर) अरे! यह तो पुजारी जी की बछिया,

महाभारत के गृहकलह से भी हमने कोई शिक्षा नहीं ली।

राणा—मन्त्री जी, आपका कहना यथार्थ है, परन्तु आप साजुम्ब सरदार और बल्लजी को जानते ही हैं। दोनों ही अपनी धुन के पक्के हैं। इस समस्या का किसी न किसी प्रकार सुलझाव होना चाहिये। पर इसे सुलझाया कैसे जाय!

एक सरदार—महाराज, मुझे एक सूझ सूझी है।

राणा—कौन सी!

सरदार—चित्तौड़ के इरद गिरद के प्राय. सब दुर्ग ... हो चुके हैं, एक अन्तला दुर्ग ही आज तक स्वतन्त्र बना है, क्यों कि उसे अभेद्य और दुष्प्राप्य समझ कर हमने अभी तक नहीं लिया है। मेरा कहना है कि चूडावतों और शक्तावतों में से जो भी उसमें प्रथम प्रवेश करे वही हरौल का अधिकारी माना जाय।

(चूडावत और शक्तावत एक ही समय-हमें स्वीकार है, हमें स्वीकार है)

राणा—आपकी सूझ तो बहुत उत्तम है नरसिंह जी। अन्तला तो किसी दिन लेना ही है, फिर मुगलों के आक्रमण से पहले ही क्यों न लिया जाय। इससे एक तो आपस में लड़कर हमारी शक्ति का व्यर्थ नाश न होगा, दूसरे, इन दोनों के विवाद का भी निर्णय हो जायगा। तीसरे, अन्तला की शक्ति से शत्रु को कोई लाभ न पहुँच सकेगा। (कुछ देर कुछ सोचने लगते हैं। अकस्मात्) मुझे स्मरण आया। एक भेद सुना है स्वप्न का।

बल्लजी—स्वप्न कैसा?

गौरी—(पेड़ के पीछे से निकलकर) कौन है तुम्हें छेड़ने वाला! अब मैं दिनभर न आऊँगी। देखूं सताने को छेड़े कोई!

दुर्गा—(हँसी से लोटपोट होती हुई) देखा, कैसा मन्त्र है मेरे पास! तीन बोलों से आपने आप निकल आया।

गौरी—अच्छा, यह बात है! ज्यों ज्यों उम्र में तू बड़ी हो रही है तुम्हारी ऐसी चंचलता और नटखटपन भी बढ़ते जा रहे हैं।

दुर्गा—अच्छा जाने दो इन प्रमोद की बातों को। जरा यह तो बताओ बहन, आज शहर में इतनी चहल-पहल क्यों है? जिसे देखो वही अस्त्र-शस्त्रों से लैस हो रहा है। आते आते मुझे कई बार घुड़सवारों के दल कहीं जाते दिखाई दिये हैं। इसीलिये मुझे कुछ देर हो गई है।

गौरी—क्या तुम्हें यह भी पता नहीं? कल मूलराज और रत्नसिंह अलग अलग अल्लाउद्दीन को विदद करने के लिए प्रस्थान करेंगे।

दुर्गा—अलग अलग क्यों?

गौरी—यह निश्चय हुआ है कि जो अल्लाउद्दीन को प्रथम विजित करेगा, वही को युवती के युद्ध में द्वितीय निकलेगा।

दुर्गा—तब तो सब लोग जायेंगे!

गौरी—मैं तुम्हारा संकेत समझ गई हूँ। हाँ, तुम्हारे वे भी जायेंगे। मैंने तो सुना है कि राठौड़ों का नायकत्व वे ही करेंगे।

दुर्गा—हे भगवान!

कपिला है। (उठकर उसके पास जाती है और उसकी पीठ पर हाथ फेरती हुई) कपिला, अब मैं जा रही हूँ (बछिया अपना मुंह उठाकर उससे प्यार करती है) थोड़े दिनों के लिए केवल, देखना पीछे उदास मत होना। दुर्गा से कह छोडूंगी, वह तुझ से प्यार करेगी, मेरे जैसा, घबराना नहीं।

(एक ओर से पैजनियों की आवाज़ आती है) अब वह आ रही है ज़रा छिपकर उसे छकाती हूँ। (एक आड़ में छिप जाती है। एक कन्या आती है। उसकी उम्र लगभग सोलह-सत्रह बरस की है। रंग बहुत गोरा और सर्वांगिण्यास सुन्दर है। तन पर उसके राजपूतों की वेष-भूषा— चुनी, अंगिया और लहंगा है और पांवों में पैजनियाँ हैं। काँख में एक गगरी उठाये है।)

कन्या—(आकर) क्या अब तक गौरी नहीं आई? लौट तो नहीं गई? (ऊंची आवाज़ से) गौरी! गौरी!! अरी ओ गौरी!! (बछिया रंभाती है—माँ, माँ, माँ, उधर देखकर) कपिला! है अरी यहाँ? गौरी कहाँ है? तू यहाँ है तो वह भी यहीं होगी। (अपने आप) अब बोलेगी। (कुछ मुस्काकर) बड़ी नटखट है। जब कभी देखो इसे घर की और घरवालों की पड़ी रहती है। इसे ज़रा देर हुई नहीं और ढूंढ़े लगे सिर पर।

गौरी—(झाड़ के पीछे से निकलकर) कौन है मुझे डंडे बरसाने वाला ! आज मैं दिनभर न जाऊंगी। देखूं बरसावे तो डंडे कोई !

दुर्गा—(हँसी से लोट-पोट होती हुई) देखा, कैसा मन्त्र है मेरे पास ! सांप बांबी से अपने आप निकल आया।

गौरी—अच्छा, यह बात है ! ज्यों ज्यों उम्र में तू बड़ी हो रही है दुर्गा, तेरी चंचलता और नटखटपन भी बढ़ते जा रहे हैं।

दुर्गा—अच्छा जाने दो इन प्रमोद की बातों को। जरा यह तो बताओ भला, आज शहर में इतनी चहल-पहल क्यों है ? जिसे देखो वही अस्त्र-शस्त्रों से सज रहा है। आते आते मुझे कई बार घुड़सवारों के वर्ग कहीं जाते दिखाई दिये हैं। इसीलिये मुझे कुछ देर हो गई है।

गौरी—क्या तुम्हें यह भी पता नहीं ? कल चूडावत और शक्तावत अलग अलग अन्तल्ला को विजय करने के लिए प्रयाण करेंगे।

दुर्गा—अलग अलग क्यों ?

गौरी—यह निश्चय हुआ है कि जो अन्तल्ला को प्रथम विजित करेगा, उसी को मुग़लों के युद्ध में हिरौल मिलेगा।

दुर्गा—तब तो सब लोग जायेंगे !

गौरी—मैं तुम्हारा संकेत समझ गई हूं। हाँ, तुम्हारे वे भी जायेंगे। मैंने तो सुना है कि शक्तावतों का आधिपत्य वे ही करेंगे।

दुर्गा—हे भगवान !

गौरी—दुर्गा, तुम उदास क्यों हो ? राजपूत-ललनायें तो इस दिन की उत्सुकता से प्रतीक्षा करती हैं ।

दुर्गा—यह बात नहीं गौरी बहिन। यदि मेरी देह उनके चरणों पर अर्पित हो चुकी होती तो मैं भी इस संकट में कुछ न कुछ करके अपने आपको धन्य मानती ! पर अब तो·······

गौरी—अब तो क्या ! अब भी बहुत कुछ कर सकती हो। मैंने तो निश्चय कर लिया है कि उनके संग·········

दुर्गा—(उसे बीचमें ही काटकर) क्या रामसिंह जीजा भी जायेंगे! तुम्हीं ने तो कहा था कि वे युद्ध के नाम से भय खाते हैं।

गौरी—तभी तो साथ जा रही हूँ। बड़ी कठिनता से उन्हें जाने को मनाया है। वे मान तो गये हैं पर मुझे भय है कि थोड़ी दूर चलकर किसी बहाने लौट न आयें। इसीलिये मैं साथ जाऊंगी कि उन्हें लौटने न दूंगी।

दुर्गा—क्या वे तुम्हारा साथ चलना पसंद करेंगे ?

गौरी—उनको पता ही न लगेगा।

दुर्गा—परन्तु कहां तक छिपा सकोगी अपने आप को ?

गौरी—मेरा नाम तब गौरी न होगा, जोरावरसिंह होगा।

दुर्गा—क्या वेष बदलोगी !

गौरी—इसमें कठिनता ही क्या है ! जोरावरसिंह बनकर चूड़ावत की सेना में भर्ती हो जाऊंगी। हम राजपूत ललनाओं को तलवार, भाला, बर्छी चलाना तो आता ही है, फिर क्या दिक्कत होगी।

दुर्गा—बहन, मुझे भी कोई मार्ग बताओ। मैं उनके संगसंग रहना चाहती हूँ। यदि ईश्वर करे कुछ ऐसी वैसी बात हो भी जाय तो उनके चरणों में देह छोड़ने की लालसा को पूर्ण कर पाऊंगी।

गौरी—यह कौनसी बड़ी बात है! दूसरे, तुम्हें तो वे पहचानते ही नहीं। अपना नाम दुर्गासिंह बताकर राजपूत सेना में भरती होजाना। फिर बदली क्या, कोई भी तुम्हें नहीं पहचानेगा।

दुर्गा—मुझे पुरुष-वेश बनाने का ढंग कौन बतायेगा?

गौरी—मैं। हम दोनों एक साथ चलेंगी, नहीं चलेंगे (हंसती है)।

दुर्गा—ठीक है, अब चलें।

(गौरी चलती चलती कपिला से प्यार करती है।)

गौरी—कपिला, उदास मत होना मेरे पीछे। शीघ्र लौटकर आऊंगी। दुर्गा भी यहां न होगी, अम्मा! क्या तेरी आँखों में आँसू! पगली! ऐसे शुभ अवसर पर भी कोई आँसू बहाता है। सोचती है शायद न लौटूं!

(दोनों चलती चलती जाती हैं)

(परदा उठता है)

गौरी—दुर्गा, तुम उदास क्यों हो ? राजपूत-ललनायें तो इस दिन की उत्सुकता से प्रतीक्षा करती हैं।

दुर्गा—यह बात नहीं गौरी बहिन। यदि मेरी देह उनके चरणों पर अर्पित हो चुकी होती तो मैं भी इस संकट में कुछ न कुछ करके अपने आपको धन्य मानती ! पर अब तो……

गौरी—अब तो क्या ! अब भी बहुत कुछ कर सकती हो। मैंने तो निश्चय कर लिया है कि उनके संग………

दुर्गा—(उसे बीचमें ही काटकर) क्या रामसिंह जीजा भी जायेंगे ! तुम्हीं ने तो कहा था कि वे युद्ध के नाम से भय खाते हैं।

गौरी—तभी तो साथ जा रही हूँ। बड़ी कठिनता से उन्हें जाने को मनाया है। वे मान तो गये हैं, पर मुझे भय है कि थोड़ी दूर चलकर किसी बहाने लौट न आयें। इसीलिये मैं साथ जाऊंगी कि उन्हें लौटने न दूंगी।

दुर्गा—क्या वे तुम्हारा साथ चलना पसंद करेंगे ?

गौरी—उनको पता ही न लगेगा।

दुर्गा—परन्तु कहां तक छिपा सकोगी अपने आप को ?

गौरी—मेरा नाम तब गौरी न होगा, जोरावरसिंह होगा।

दुर्गा—क्या वेष बदलोगी !

गौरी—इसमें कठिनता ही क्या है ! जोरावरसिंह बनकर मुगलों की सेना में भर्ती हो जाऊंगी। हम राजपूत ललनाओं को तलवार, भाला, बर्छी चलाना तो आता ही है, फिर क्या दिक्कत होगी।

गौरी—दुर्गा, तुम उदास क्यों हो ? राजपूत-ललनायें तो इस दिन की उत्सुकता से प्रतीक्षा करती हैं।

दुर्गा—यह बात नहीं गौरी बहिन। यदि मेरी देह उनके चरणों पर अर्पित हो चुकी होती तो मैं भी इस संकट में कुछ न कुछ करके अपने आपको धन्य मानती ! पर अब तो——

गौरी—अब तो क्या ? अब भी बहुत कुछ कर सकती हो। मैंने तो निश्चय कर लिया है कि उनके संग………

दुर्गा—(उसे बीचमें ही काटकर) क्या रामसिंह जीजा भी जायेंगे ! तुम्हीं ने तो कहा था कि वे युद्ध के नाम से भय खाते हैं।

गौरी—तभी तो साथ जा रही हूँ। बड़ी कठिनता से उन्हें जाने को मनाया है। वे मान तो गये हैं पर मुझे भय है कि थोड़ी दूर चलकर किसी बहाने लौट न आयें। इसीलिये मैं साथ जाऊंगी कि उन्हें लौटने न दूंगी।

दुर्गा—क्या वे तुम्हारा साथ चलना पसंद करेंगे ?

गौरी—उनको पता ही न लगेगा।

दुर्गा—परन्तु कहां तक छिपा सकोगी अपने आप को ?

गौरी—मेरा नाम तब गौरी न होगा, जोरावरसिंह होगा।

दुर्गा—क्या वेष बदलोगी !

गौरी—इसमें कठिनता ही क्या है ! जोरावरसिंह बनकर चूड़ावत की सेना में भर्ती हो जाऊंगी। हम राजपूत ललनाओं को तलवार, भाला, बर्छी चलाना तो आता ही है, फिर क्या दिक्कत होगी।

की शपथ लेकर सबके सम्मुख यह प्रण करताहूं कि अन्तल्ला दुर्गको विजय करके ही दम लूंगा और यदि इसमें असफल रहा तो चित्तौड़ को फिर अपना मुँह न दिखाऊंगा !

(शक्तावत-पक्षीय सैनिक—'शक्तावत शिरोमणि बल्लजी की जय' के नारे लगाते हैं। बल्लजी अपने स्थान को लौट जाता है)

राणा—मेवाड़ के बहादुर वीरो, मुझे आप लोगों को मातृभूमि की सेवा के लिए प्रयाण करते देखकर बहुत आनन्द हो रहा है। तुम लोग वही कार्य करने को जा रहे हो जो तुम्हारे पुरखा सदियों से करते आये हैं। राजपूतों ने मातृभूमि मेवाड़ की रक्षा में जैसे बलिदान किए हैं, आप लोगों से वे छिपे नहीं हैं। मुझे आशाहै कि तुम भी किसी से पीछे न रहोगे। अन्तल्ला को अभेद्य बताया जा रहा है, परन्तु राजपूती तलवार और हिम्मत के आगे कुछ भी अभेद्य नहीं। ईश्वर तुम्हें सफलता प्रदान करें।

(कुछ राजपूत-नारियां एक हाथ में पुष्पमाला और दूसरे में आरती की थाली लिए आती हैं, और दो पक्षों में विभक्त होकर अपने-अपने पक्ष के पास खड़ी होजाती हैं।)

(वे गाती हैं)

सब—उठो उठो भारत-सन्तानों, रणभेरी-आह्वान सुनो,
उठो उठो माँ रटा रही है, माँ के क्रन्दनगान सुनो।

नौवाँ दृश्य

(स्थान चित्तौड़—खुला मैदान, उसके ठीक बीचमें गड़े हुए एक ऊँचे लट्ठ पर सीसोदीय राज्य का झंडा लहरा रहा है। मैदान के दोनों ओर पंक्तियों में बहुत से राजपूत सैनिक खड़े हैं। दोनों पंक्तियों के सिरों पर उनके अध्यक्ष खड़े हैं, सब अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित हैं। एक ओर सालुम्बा सरदार, बंश ठाकुर और कुछ और चूडावत सरदार खड़े हैं और दूसरी ओर सामने की पंक्ति में बल्लजी, योध, अंबलेरा आदि शक्तावत सरदार खड़े हैं राणा अमरसिंह आते हैं। सब अपने अपने स्थानों पर खड़े उन्हें अभिवादन करते हैं।)

सालुम्बा सरदार—(झंडे के पास आकर) मैं सीसोदीय कुलावतंस श्री बप्पा रावल और शूर चंड के चरणों की शपथ लेकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि तन मे प्राण रहते अन्तल्ला को हस्तगत करने में आगा पीछा न देखूंगा, और यदि इस प्रयास में असफल रहा तो चित्तौड़ मे प्रवेश न करूंगा।

(सब चूडावतवंशीय सैनिक -'सालुम्बा सरदार की जय' के नारे लगाते हैं। चूडावत सरदार लौटकर अपने स्थान को चला जाता है।)

बल्लजी—(झंडे के पास जाकर) मैं सूर्य-कुल-भूषण बप्पा रावल और प्रातः स्मरणीय महाराणा प्रतापसिंह के चरणों

की शपथ लेकर सबके सम्मुख यह प्रण करताहूं कि अन्तला दुर्गको विजय करके ही दम लूंगा और यदि इसमें असफल रहा तो चित्तौड़ को फिर अपना मुँह न दिखाऊंगा !

(शक्तावत-पक्षीय सैनिक—'शक्तावत शिरोमणि बल्लजी की जय' के नारे लगाते हैं । बल्लजी अपने स्थान को लौट जाता है)

राणा—मेवाड़ के बहादुर वीरो, मुझे आप लोगों को मातृभूमि की सेवा के लिए प्रयाण करते देखकर बहुत आनन्द हो रहा है । तुम लोग वही कार्य करने को जा रहे हो जो तुम्हारे पुरखा सदियों से करते आये हैं । राजपूतों ने मातृभूमि मेवाड़ की रक्षा में जैसे बलिदान किए हैं, आप लोगों से वे छिपे नहीं हैं । मुझे आशाहै कि तुम भी किसी से पीछे न रहोगे । अन्तला को अभेद्य बताया जा रहा है, परन्तु राजपूती तलवार और हिम्मत के आगे कुछ भी अभेद्य नहीं । ईश्वर तुम्हें सफलता प्रदान करें ।

(कुछ राजपूत-नारियां एक हाथ में पुष्पमाला और दूसरे में आरती की थाली लिए आती हैं, और दो पक्षों में विभक्त होकर अपने-अपने पक्ष के पास खड़ी होजाती हैं ।)

(वे गाती हैं)

सब—उठो उठो भारत-सन्तानों, रणभेरी-आह्वान सुनो,
उठो उठो माँ बुला रही है, माँ के क्रन्दनगान सुनो ।

नौवाँ दृश्य

(स्थान चित्तौड़—खुला मैदान, उसके ठीक बीचमें गड़े हुए एक ऊंचे लट्ठ पर सीसोदीय राज्य का झंडा लहरा रहा है। मैदान के दोनों ओर पंक्तियों में बहुत से राजपूत सैनिक खड़े हैं। दोनों पंक्तियों के सिरों पर उनके अध्यक्ष खड़े हैं, सब अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित हैं। एक ओर सालुम्बा सरदार, चंदा ठाकुर और कुछ और चूड़ावत सरदार खड़े हैं और दूसरी ओर सामने की पंक्ति में वल्लजी, घोघ, चंचलेश आदि शक्तावत सरदार खड़े हैं तथा अमरसिंह आते हैं। सब अपने अपने स्थानों पर खड़े उन्हें अभिवादन करते हैं।)

सालुम्बा सरदार—(झंडे के पास आकर) मैं सीसोदीय कुलावतंस श्री बप्पा रावल और शूर चंड के चरणों की शपथ लेकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि तन में प्राण रहते अन्तल्ला को हस्तगत करने में आगा पीछा न देखूंगा, और यदि इस प्रयास में असफल रहा तो चित्तौड़ में प्रवेश न करूंगा।

(सब चूड़ावतपक्षीय सैनिक - 'सालुम्बा सरदार की जय' के नारे लगाते हैं। चूड़ावत सरदार लौटकर अपने स्थान को चला जाता है।)

वल्लजी—(झंडे के पास आकर) मैं सूर्य-कुल-भूषण बप्पा रावल और प्रातः स्मरणीय महाराणा प्रतापसिंह के चरणों

सब—उठो उठो, भारत सन्तानों, रणभेरी-आह्वान सुनो,
उठो उठो, माँ उठा रही है, माँ के क्रन्दन-गान सुनो ॥

चौथी बालिका—

जग के बंधन तोड़ फोड़ कर छोड़ो ममता माया को,
छोड़ो भाई, छोड़ो बहनें, छोड़ो घर की साया को।
क्यों चिमटे हो इस काया से, यह तो आती जाती है,
अभी गई फिर नई आ गई, सदा न रहने पाती है।
पर आत्मा न कभी मरती है, उसकी ही आवाज़ सुनो ॥

सब—उठो उठो, भारत-सन्तानों, रणभेरी-आह्वान सुनो,
उठो उठो, माँ उठा रही है, माँ के क्रन्दन-गान सुनो ॥

पाँचवीं बालिका—

पुष्प-मालिका, चंदन, रोली लिये यहाँ पर आई हैं,
पत्नी, बहिन, तुम्हारी जननी जलते दीपक लाई हैं।
दीपक ये स्वातन्त्र्य-चिह्न हैं, ये न कभी बुझने पावें,
विद्युत् चमके, बादल गरजे, नभ में कृष्ण घटा छाये।
इन्हीं दीपकी ज्वलत् शिखा पर सहस्त्रों का बलिदान सुनो॥

सब—उठो उठो, भारत सन्तानों, रणभेरी-आह्वान सुनो,
उठो उठो, माँ उठा रही है, माँ के क्रन्दन गान सुनो ॥

(प्रत्येक बालिका अपने अपने सम्बन्धी को माला पहनाती है और तिलक लगाती है।)

सब— मालायें पहनाती हैं हम चन्दन, तिलक चढ़ाती हैं,
वीरों के उन्नत भालों को अपने प्राण सजाती हैं।
लाज तुम्हें हमारी रखनी है, पग आगे धरते जाना,
उन्नत भाल लिये घर आना, करना स्वराज्य पाना ॥

अबलाओं की यही साधना है इसको धर ध्यान सुनो।
उठो उठो, भारत-संतानों, रणभेरी-आह्वान सुनो,
उठो उठो, माँ उठा रही है, माँ के क्रन्दन गान सुनो ॥
इसी तरह जयमालायें और हीर, तिलक-संभार लिये,
द्वार-द्वार पर खड़ी रहेंगी, हृदयों के उद्गार लिये।
गर्वोन्नत ग्रीवाओं में जब जयमालायें पहनावेंगी,
फलीभूत जीवन को पाकर स्वर्गानन्द मनावेंगी ॥
वरना सती-चिता ही होगा जीवन का अवसान सुनो।
उठो उठो, भारत-सन्तानों, रणभेरी-आह्वान सुनो,
उठो उठो, माँ उठा रही है माँ के क्रन्दन-गान सुनो ॥

(सब नारियां गाती गाती जाती हैं।)

(एक सोलह सत्रह वर्षकी स्वस्थावयव-पन्न की बालिका और थाल उठाये एक कोनेमें सिर नीचे किये लज्जित-सी खड़ी)

घोष—(वत्सजी से) भैयो, मालूम होता है इस बालिका का सम्बन्धी नहीं है। फिर भी देशप्रेम से प्रेरित होकर आई है।

वत्सजी—क्या किया जाय फिर?

घोष—आप हमारे नायक हैं, आप ही इसके उपहार स्वीकार करें।

(वत्सजी उस बालिका के पास जाता है)

वत्सजी—(उस कन्या से) तुम्हारा कोई सम्बन्धी नहीं है क्या

बालिका—है तो पर ....

वत्सजी—पर क्या? (अपने आप) शायद अभी आया न
(उससे) अच्छा मुझे ही अपना सम्बन्धी मानो।

मालिका—(नीचे सिर किये हुए) मेरे प्राणनाथ !

सत्यदेव—(हँसते हँसते) अब क्यों सम्बन्ध हुआ मेरा तुमसे !

मालिका—यह फिर बताऊँगी ।

सत्यदेव—फिर क्यों ? अब क्यों नहीं !

मालिका—अब नहीं, फिर कभी ।

(उसके गले में माला डालती है)

सत्यदेव—(हँसते हँसते) अच्छा, फिर सही ।

(बैठकर धरते धरते स्थान को जाते हैं)

(सब सैनिक, पहले सूरजगढ़-पक्ष के और पीछे चन्द्रगढ़-पक्ष के पीछे-पीछे जाते हैं ।)

(परदा गिरता है)

—:o:—

दूसरा अंक

पहला दृश्य

(चित्तौड़ से तीन कोस की दूरी पर एक खुला मैदान। राजपूतों का
शिविर, उसमें कई तम्बू और शामियाने लगे हुए हैं। कई राजपूत
सैनिक, कुछ सैनिक वेष में सशस्त्र और कुछ साधारण वेष में
आ जा रहे हैं। शिविर के ठीक मध्य में एक बड़ा तम्बू
खड़ा है। उस पर राजपूती ध्वजा फहरा रही है।
उसके बाहिर कुछ सशस्त्र सैनिक पहरा दे
रहे हैं। उसके पास ही एक सुकुमार
सैनिक वेष-भूषा से सज्जित
उदास सा खड़ा है।
एक राजपूत
सरदार
पास
से
गुज़रता
हुआ उसके पास
खड़ा हो जाता है।)

राजपूत सरदार—क्यों भाई, तुम ऐसे उदास क्यों खड़े हो?

राजपूत युवक—सोच रहा हूं कि किधर जाऊँ।

राजपूत सरदार—लौट रहे हो क्या?

राजपूत युवक—हाँ, लौटना पड़ा ही है।

राजपूत सरदार—क्यों?

राजपूत युवक—सेनाध्यक्ष ने मेरी सेवा को स्वीकार नहीं किया।

राजपूत सरदार—भैया ने क्या ?

(तम्बू के अन्दर से एक राजपूत वीर निकलता है। वेश-भूषा से मालूम होता है कि वह सेनाध्यक्ष है।)

अध्यक्ष—वीर भैया, यहां क्यों खड़े हो ? (ध्यान से देखकर) तुम्हारे पास कौन खड़ा है यह ? (पास आकर) अभी तुम गये नहीं दुर्गासिंह ?

वीर—बड़े भैया, यह कौन है ?

बल्लजी—यह एक युवक है। सेना में भर्ती होने आया था, पर इसकी सुकुमार देह और अल्प आयु देखकर दयावश मैंने इसे स्वीकार नहीं किया।

दुर्गासिंह—क्या हृदय की उमंगों का नाप देह और आयु से होता है सरकार !

बल्लजी—फिर भी कार्य के अनुसार ही पात्र का निर्णय होता है।

वीर—ठीक है युवक, तुम्हारी यह सुकुमार देह रण-क्षेत्र की कठिनताओं को सहन भी न कर सकेगी वास्तविक युद्ध की तो बात ही रही।

बल्लजी—(ज़रा मुस्कराकर) इसे नारी बनाते-बनाते विधाता के मन में आया कि इसे नर होना चाहिए, बस और कुछ नहीं सोचा और बना दिया इसे नर।

दुर्गासिंह—नारी जाति को आप हेय समझते हैं क्या ? क्या राजपूत-

बल्लभी—यह बताओ भाई कि तुम काम क्या करोगे ?

दुर्गासिंह—जो आप आदेश देंगे।

बल्लभी—मेरे पास तो केवल सैनिक का कार्य है। उसके मैं तुम्हें योग्य नहीं समझता।

दुर्गासिंह—मुझे अपने चरणों में ही टिकना दीजिए, उनकी सेवा का भार मैं अपने ऊपर लूंगा।

बल्लभी—(हंसकर) एक और मुसीबत मेरे गले पड़ी। अरे भाई, मैं युद्ध संचालन का कार्य करूंगा कि तुम्हारी देखभाल !

योग—भैया, मेरा यह विचार है कि इसे अपने पास ही रक्खें। थोड़ा बहुत काम इसे दे छोड़ा करें। इससे ही यह सन्तुष्ट रहेगा।

बल्लभी—जैसी आपकी इच्छा। (दुर्गासिंह से) आओ भाई मेरे साथ। (चलते चलते) यह जो (तंबू की ओर निर्देश कर) बड़ा सा तंबू है न, यही मेरा डेरा है। उसके पास ही एक और छोटा सा तंबू लगा है। उसमें तुम अपना डेरा बना लो ! जब कभी मैं बुलाऊँ हाज़िर होजाया करना। समझे ! तुम्हारा नाम दुर्गासिंह ही है न ? (अपने आप) नाम भी गुणानु-कूल ही है—शरीर दुर्ग (किले) जैसा और हृदय सिंह जैसा।

(जाता दिखा है)

गौरी—सीढ़ी बनाने चली हूँ। आज सरदार ने आदेश दिया है कि कुछ सीढ़ियाँ बनाकर साथ ले चलो कि दीवारों के फाँदने में काम आयेंगी।

दुर्गा—दुर्ग की दीवारें इतनी छोटी हैं क्या ?

गौरी—वे तो सुना है बहुत ऊँची हैं, पर इसे अपने स्वामी महाराज के लिये तैयार कर रही हूँ। जब वे ऊपर चढ़ आयेंगे तो नीचे से इसे हटा लूँगी कि वे भाग न सकें।

दुर्गा—क्या अब भी वे भागना चाहते हैं ?

गौरी—भागने के लिये कई बार उन्होंने यत्न किये पर मैंने कभी सफल नहीं होने दिया। तुम्हारे आने से पहले वे यहीं थे और इसी बात पर हमारा विवाद हो रहा था। दुर्गा, मैं कई बार सोचती हूँ इस विवाहित जीवन से तो अविवाहित ही रहती तो अच्छा होता।

दुर्गा—छोड़ो इस बात को गौरी। जो काम तुम सच्ची राजपूतनी की तरह कर रही हो, उसे करती जाओ, ईश्वर फल देगा।

गौरी—तुम अपनी सुनाओ दुर्गा, क्या प्रेमधन से समागम हुआ कि नहीं ?

दुर्गा—(हँस कर) रात्रि-दिन उन्हीं के पास तो रहती हूँ।

गौरी—सच।

दुर्गा—हाँ, सच। पहले तो उन्होंने मुझे बिल्कुल निराश ही किया था, परन्तु फिर कुछ सोच कर मुझे सेना में भर्ती कर लिया। अब तो मुझ पर इतने प्रसन्न हैं

वल्लजी—तुम्हें पता नहीं भाई, इतने युग तिर के पंजोंसे शिकार खेलकर चला आ रहा हूँ, सैकड़ों तीरों की भयङ्कर बौछार का अकेला सामना करता रहा हूँ, परन्तु जब कभी तुम्हारे समान सुकुमार, भोले-भाले नवयुवक के रणकुण्ड में आहुत होने की सम्भावना का विचारमात्र ही मन में उठता है तो रण से घृणा होने लगती है।

दुर्गासिंह—मेरी आयु अवश्य छोटी है सरदार, पर मेरी नसों में भी सीसोदिया वंश का रक्त बह रहा है। मैं आप लोगों के साथ मातृभूमि के बलिदान-यज्ञ में आहुत होने के लिए आया हूं, न कि आपके मार्ग में कांटे बखेरने। अभिमन्यु की आयु क्या मुझसे बड़ी थी? उस अकेले ने सप्त महारथियों के छक्के छुड़ा दिये थे। मुझसे भी अल्पवयस्क लव अकेले के सामने शत्रुघ्न और मारुति जैसे महावीरों की दाल न गली थी। मैं भी उन्हीं के वंश से हूं और उन्हीं के जीवन का उद्देश्य लेकर यहां आया हूं।

(योध आता है ।)

योध—(दुर्गासिंह को देखकर) तुम कहां थे भैया ?

वल्लजी—यही तो मैं भी पूछ रहा हूं।

दुर्गासिंह—मैं आपके लिए एक आवश्यक समाचार लाया हूं।

वल्लजी—क्या ?

दुर्गासिंह—मेरा एक घनिष्ट मित्र भर्ती हुआ है चूड़ावतों में। उसे मिलने का मेरे दिल में विचार उठा। सोचा आज के दिन तो यहां पड़ाव है ही क्यों न उसे मिल आऊँ।

बख्तजी—उसी से मिलने गया था तू?

दुर्गासिंह—हाँ सरकार। जब मैं वहां पहुँचा तो वह बाँसकी सीढ़ी बनाने में व्यग्र था। पूछने पर उसने बताया कि साहुल सरकार ने आदेश दिया है कि ऐसी अनेकों सीढ़ियां बनवा की दीवारों को फांदने के लिए साथ ले जानी होंगी।

बोध—हमारी जो यह धारणा थी कि दीवारों को फांदने में अ काफी समय लगेगा वह भ्रान्त सिद्ध हुई है।

बख्तजी—यह उपाय तो उन्हें सूझ गया है फिर भी वे हमसे पह यहां न पहुँच सकेंगे। उनका मार्ग बहुत लम्बा है।

दुर्गासिंह—उन्हें एक छोटा मार्ग भी मिल गया है।

बख्तजी—कैसे ?

दुर्गासिंह - एक गड़रिये से उन्हें जंगल के एक ऐसे मार्ग का प लग गया है जो यहां से केवल पांच ही कोस है।

बोध—(विस्मय से) केवल पांच ही कोस!

दुर्गासिंह - हाँ सरकार, वे कल ही कूच करेंगे।

बख्तजी—ऐसा, अब क्या करना चाहिए ?

बोध—यह भी तो मालूम नहीं कि मुगलों ने दुर्ग को रसद का कै प्रबन्ध किया हुआ है ?

बख्तजी - इसका पता लगाना कठिन है, क्योंकि इसका एक ही है और वह भी बहुधा बन्द रहता है।

दुर्गासिंह—यदि मुझे आज्ञा हो तो मैं पता लगा आऊँ।

सिंह—(विस्मित होकर) जोरावर सिंह, यदि मान जाओ तो मैं एक बार घर हो आऊं। एक ही दिन में लौट आऊँगा और अपने पड़ाव पर तुम लोगों के पास पहुँच जाऊँगा।

जोरावरसिंह—देखिये जी, यह न होगा। इस प्रकार दुविधा में काम न चलेगा। घर की चिन्ता थी तो घर में ही रहते, आये क्यों थे?

रामसिंह—तुम्हें पता तो है कि मैं अपनी मरज़ी से नहीं आया।

जोरावरसिंह—जिनके लिए जा रहे हो यदि उसीसे धिक्कार मिलेंगे तो कौड़ी के न रहोगे।

रामसिंह—मान तो रहा हूँ, पर......अच्छा, जैसी तुम्हारी इच्छा।

अच्छा, जो घोड़ी तुमने तैयार की थी वह कहां है?

जोरावरसिंह—अपने डेरे के पास ही तो पड़ी है।

रामसिंह—तुम इधर चलो और मैं अभी आता हूं। (सामने देखकर) देखो सरदार इधर ही आ रहे हैं, उनसे भी अभिवादन कर लूं, मिले बहुत समय हो गया है। तुम चलो।

जोरावरसिंह—(सशंक नेत्रों से उसे देखकर) जल्दी आना, मैं आप की प्रतीक्षा में रहूँगा। (जाता है।)

रामसिंह—(अपने आप) इस दुष्ट से तो पीछा ही नहीं छूटता, छाया की तरह पीछे लगा है। (कुछ सोचकर) अच्छा, यह चाल भी चल देखूं।

(सरदार और एक सैनिक आते हैं। रामसिंह उन्हें अभिवादन करता है।)

सालुम्बा सरदार—रामसिंह जी, आप यहाँ खड़े हैं और सब लोग तो प्रस्थान की तैयारी कर रहे हैं।

रामसिंह—सरदार, आपकी ही खोज में हूँ। एक बात आपसे है, जरा गुप्त है।

सालुम्बा सरदार—कोई भय नहीं, निश्शंक कह डालो। ये भी (सैनिक की ओर इशारा कर) अंतरंगों में से हैं।

रामसिंह—सरदार, मेरा एक साथी है जोरावर नाम का। मुझे उस पर कुछ सन्देह है, वह शक्तावतों का भेदिया मालूम होता है।

सालुम्बा सरदार—आपको कैसे पता लगा है?

रामसिंह—हमारी प्रत्येक गति को बड़ी तन्मयता से देखता रहता है। साथ ही हमारे रहस्यों की जानकारी प्राप्त करने में विशेष रुचि रखता है।

सालुम्बा सरदार—यह तो कोई सन्देह की बात नहीं, प्रत्येक सच्चे सैनिक को चौकन्ना रहना चाहिए।

रामसिंह—कभी कभी अपने दल से पिछड़ भी जाता है। प्रतीत ऐसा होता है कि यहाँ की गुप्त बातों को किसी के द्वारा वहाँ तक पहुँचाता रहता है।

सालुम्बा सरदार—हमारे गोप्य ही क्या है जो वह बतायेगा।

रामसिंह—फिर भी सरदार, उस पर दृष्टि रखना आवश्यक है।

सालुम्बा सरदार—वह कहाँ है?

रामसिंह—मेरे ही डेरे में। इसलिए मैंने उसे अपने पास रक्खा हुआ है।

ज़ोरावरसिंह—जसी आपकी इच्छा। मुझे इन्हीं को (रामसिंह की ओर इशारा कर) देख-रेख में रखिये। मुझे कुछ आपत्ति न होगी।

रामसिंह—नहीं सरकार, यह···

मालुम्बा सरदार—क्यों नहीं ! यही अच्छा होगा। तुम दोनों में जानकारी भी है।

(ज़ोरावरसिंह मुस्करा देता है, सरदार जाता है)

ज़ोरावरसिंह—बताइये सरकार ! कैसी बनी ! चाल तो चली थी बहुत बढ़िया, पर उल्टे पड़ी आपकी ही। (मुस्करा कर) बताइये देख-रेख आपकी होनी चाहिये या मेरी ? अब आपका पिंड न छूटेगा। आपको यदि पत्नी का मोह इतना प्रबल है तो उससे भी भेंट करा दूंगा। है स्वीकार ? वह राजपूतनी है, मानती मानती आयेगी, तुम्हारे जैसी···

रामसिंह—अब अधिक लज्जित न करो। चलो चलें।

(दोनों जाते हैं।)

(परदा गिरता है।)

पाँचवाँ दृश्य

(अन्तल्ला दुर्ग का बाहरी भाग। दुर्ग एक ऊँची दीवार पर बना है, उसके चारों ओर ऊँची ऊँची पत्थर की दीवारें हैं। दीवारों के ऊपर थोड़ी थोड़ी दूरी पर गोल गुंबद बने हुए हैं, जिनमें रक्षापुरुषों के बैठने का और दुर्ग की रक्षा का सामान रखने का स्थान है। दुर्ग के अन्दर जाने का केवल एक ही बहुत बड़ा फाटक है जिसमें थोड़े थोड़े अन्तर पर नुकीले कील लगे हुए हैं। दुर्गासिंह एक छोटी सी गठरी उठाये फाटक के इधर उधर देख रहा है।)

दुर्गासिंह—(कुछ आगे पीछे देखकर और इधर उधर चलकर) समझ में नहीं आता भीतर कैसे जाऊँ! इस फाटक के सिवा अंदर जाने का कोई दूसरा द्वार नहीं है और फाटक बंद है। (सामने से दो आदमी आते दिखाई देते हैं जो उसके पास ही आ जाते हैं। दुर्गासिंह उनसे पूछता है।) क्योंजी, यह फाटक कब खुलेगा?

एक आदमी—आज कल यह नहीं खुलता।

दुर्गासिंह—खुलता नहीं! यह क्यों?

दूसरा आदमी—तुम यहां के रहने वाले मालूम नहीं होते।

दुर्गासिंह—हाँ, हूँ तो परदेसी ही।

दूसरा आदमी—तभी तो। भैया, सुना है राणा अमरसिंह इन पर धावा बोलने वाले हैं। इसी आशंका से इसका द्वार आज कल बंद रहता है।

दुर्गासिंह—अंदर के लोग खाते पीते क्या होंगे?

पहला आदमी—इन्होंने पांच-छः मास के लिए खाने पीने का सामान इकट्ठा कर रक्खा है। अच्छा भाई, राम राम! अब हम जाते हैं (दोनों चले जाते हैं।)

दुर्गासिंह—(सोचता है) भीतर जाने का कोई उपाय निकालना ही पड़ेगा। (गहरी सोच के बाद) कोई न कोई द्वाररक्षक तो अवश्य यहां रहता ही होगा। (एक छिद्र में से भीतर की ओर झांकता है।) हाँ, दो पठान पड़े हैं। (कुछ ओट में चला जाता है। कुछ ही समय के बाद स्त्री के वेष में आकर) अब ठीक है। पर कपड़े कुछ अधिक मैले और फटे हुए होने चाहिएं, तभी तो भिखारिनि लगूँगी। (कपड़ों पर कुछ धूल डाल लेती है और कई जगहों पर उन्हें फाड़ डालती है) (ऊंची आवाज़ से—'अल्लाह के बंदो! रोटी दिलाओ। बेबस भिखारिनि को खाना खिलाओ।' कहती कहती इधर उधर घूमने लगती है। उसकी आवाज़ सुनकर दो चार आदमी आकर खड़े हो जाते हैं।)

एक आदमी—इस सुनसान स्थान में तुम्हें खाना कहां मिलेगा? पास के गाव में क्यों नहीं चली जाती?

से आऊ ? अच्छा, उधर से ही आती हूँ।

(दुर्ग से पीछे की ओर चली जाती है)

(परदा उठता है।)

छठा दृश्य

(अच्छा दुर्ग का भीतरी भाग। दुर्ग के आंगन में चार तंबू खड़े हैं। उनके बाहिर कुछ पठान सैनिक आराम से पड़े हुए हैं। कुछ गपशप हाँक रहे हैं और कुछ खाने पीने में व्यस्त हैं। दो पठान भिखारिन को हाथों का सहारा दिये कुँए की ओर ले जा रहे हैं। उधर से एक पठान शस्त्रों से सज्जित आता है। कोई अधिकारी मालूम होता है।)

अधिकारी—(द्वाररक्षकों को देख कर) समझदारों, तुम अपना पहरा छोड़कर इधर क्यों आये हो ? किसे खींचे ला रहे हो (देखकर) अरे यह तो कोई औरत है ? कौन है यह !

एक द्वाररक्षक—एक भिखारिन है सरकार। पानी की प्यास से मर जा रही थी, इसी लिए……

अधिकारी—दरवाजे पर कौन है ?

दूसरा द्वार-रक्षक—(भयभीत-सा) कोई नहीं।

अधिकारी—(क्रोध से पांव भूमि पर पटक कर) अगर कोई फाटक खोल दे तो ! भागकर अपने काम पर जाओ।

(दोनों द्वार-रक्षक भिखारिन को कुएँ के पास ही छोड़ कर भाग जाते हैं।)

मैं मर गया तो मेरी बीबी और बच्चों की परवरिश कौन करेगा ?

दूसरा—ज़रा धीरे धीरे बोलो, पास कोई खड़ी है।

तीसरा—कोई मँगनी मालूम होती है। (भिखारिन से) क्यों ! तू यहां पर खड़ी खड़ी क्या कर रही है ?

(वह कुछ उत्तर नहीं देती।)

पहला—क्या तू बहरी है ? (उसके पास जाता है) क्या कुछ सुना ! बोलती क्यों नहीं ?

भिखारिन—ओं ··ओं ··ओं (इशारे से गूँगी होने का बहाना करती है।)

दूसरा—यह गूँगी है।

पहला—और बहरी भी।

तीसरा—इसे खड़ी रहने दो ! जैसा पत्थर वैसी यह। न सुन सकती है और न बोल सकती है।

पहला—(हटाकर) ठीक तो है। हाँ, मैं कह रहा था, मेरे पीछे मेरे बाल-बच्चों की परवरिश कौन करेगा।

दूसरा—ठीक तो है। अपनी जान किसको प्यारी नहीं होती।

तीसरा—जिनके लिए जान दी जाय, उनमें भी इन्सानियत होनी चाहिए। हम लड़ते मरते रहेंगे और हमारे सरदार बैठे लड़ाते रहेंगे या औरतों के बुर्कों में छिपे रहेंगे।

दूसरा—लाचारी तो इस बात की है कि फाटक पर का पहरा पहले से ज्यादा कड़ा कर दिया गया है और निकलने का कोई दूसरा रास्ता ही नहीं।

मल्लू—क्यों नहीं, मैं चलता हूँ।

हीरा—ऐं क्या ! कौन था ?

पन्ना—(धीरे से उसके कान के पास) यहाँ से दाहिनी ओर जो दीवार है, उस पर से मकान के पीछे की ओर नीचे पानी बहने की एक नाली है। पर ज़रा दो जाती है। इसमें से एक आदमी बड़ी आसानी से निकल सकता है।

हीरा—निकलने का उपाय तो है, पर अगर पकड़े गये तो ज़िन्दा ज़मींदोज़ किये जायेंगे।

पन्ना—पकड़े जाने का कोई ख़तरा नहीं, ऊपर बिल्कुल सन्नाटा है। पर जाना चाहिए एक एक कर।

(दोनों जाते हैं)

[illegible]—निकलने का रास्ता तो मालूम हो गया। अब यहाँ से चलना ही ठीक होगा।

(जाती है।)

(पट-प्रक्षेप)

तीसरा अङ्क

पहला दृश्य

(कन्नौज से लगभग दो कोस पहले एक मैदान ! यहाँ पर बहुत से सैनिक युद्ध की तैयारी में व्यस्त हैं—कोई तलवार की धार निकाल रहा है, कोई भाले की नोक तेज़कर रहा है, कोई उसे रेत से उजला कर रहा है और कुछ दो दो चार-चार की टोलियाँ बनाकर गपशप कर रहे हैं । बलजी अपने तम्बू के बाहिर कुछ व्यग्र से खड़े हैं ।)

बलजी—दुर्गासिंह अभी तक नहीं आया । कहता था कि अगले दिन प्रातः ही पहुँच जाऊँगा । अब तो दोपहर भी ढल चली है । (सामने खड़े एक सैनिक से) वीरसिंह ! (वह पास आता है) वीरसिंह, ज़रा जाकर योधजी को बुला लाओ । (वीरसिंह अभिवादन कर जाता है) उसे भेजना न चाहिए था, आखिर अपरिपक्वबुद्धि बालक ही तो था । इतने बड़े काम का बोझ उस पर डालना मूर्खता थी । (योध आता है ।) योध भैया, दुर्गासिंह अभी तक नहीं आया, क्या किया जाय ?

योध—मैं भी इसी चिन्ता में हूँ । अब तक उसे आ जाना चाहिए था ।

बल्लजी—(भृकुटि तानकर) मैं समझ गया हूँ इस धूर्त की चालाकी। हमें कैसा उल्लू बना रक्खा था इसने! (ग्रामीण और सैनिकों से) तुम अब जाओ।

योध—क्या बात है भैया?

बल्लजी—सब भेद खुल गया है। मालूम होता है वह चूड़ावतों का भेदिया है।

योध—क्या इसी एक साधारण सी घटना के आधार पर आप...

बल्लजी—एक घटना नहीं भैया। आपको पता है एक बार पहले भी वह छिपकर यहां गया था। मैंने पूछा तो कहने लगा कि एक मित्र को मिलने गया था।

योध—भैया, उसका भोला भाला चेहरा तो नहीं बताता कि वह इतना छली और कपटी हो सकता है!

बल्लजी—कई बार आकृति से बहुत धोखा लग जाता है। कैसा उसने मुग्ध कर रक्खा था मुझे!

योध—यही होगा। मेरा विचार है कि हमें अधिक प्रतीक्षा की आवश्यकता नहीं। आज ही कूच कर देना चाहिए।

बल्ल जी—योध, मेरा चित्त अब क्रोध से विक्षुब्ध हो रहा है। मैं उसे चूड़ावत दल तक पहुँचने ही न दूंगा। अभी पहुँचकर उसे इस कृतघ्नता का मज़ा चखाता हूँ।

योध—भैया, व्याकुल होने का समय नहीं, चूड़ावत कहीं पहले ही दुर्ग में न प्रवेश कर जायें।

[illegible]न्द्री—मेरा चित्त तब तक शान्त न होगा जब तक मैं इस सपोले का सिर कुचल न डालूंगा। (क्रोध से) कितना नीच निकला है यह ! आप लोग अपने पड़ाव पर पहुँचें, मैं वहीं मिल जाऊँगा।

(शस्त्र उठाकर सहसा निकल जाता है।)

[illegible]र—(पास खड़े सैनिक से) वीरसिंह, तुम भैया के पीछे पीछे जाओ। देखना कोई दुर्घटना हो जाय तो हमें तुरन्त सूचित करना। (वीरसिंह जाता है) कैसी बेढंगी समस्या है ! कुछ समझ में नहीं आता। (सोचकर) मुझे तो लगता है कि भैया भ्रम में हैं। अमृत में विष ! नहीं, हो नहीं सकता।

(परदा गिरता है)

दूसरा दृश्य

(अन्ताल्वा की एक बाहरी सड़क। दुर्गासिंह एक छोटी सी गठरी उठाये लम्बे लम्बे डग भरता आ रहा है। उसके माथे से पसीने के बिंदु गिर रहे हैं, फिर भी निरन्तर चला आ रहा है।)

[illegible]र्गासिंह (सामने एक शिविर देखकर) पहुँच गया हूं। मैं तो सोच रहा था कि शिविर अभी बहुत दूर है। (सामने आते हुए एक मनुष्य को देखकर) फिर भी इस मनुष्य से पूछ ही लूं। (मनुष्य से) क्यों जी यह शिविर शक्तावतों का है न ?

[illegible]नुष्य—शक्तावत इधर कहां रहे ! यह तो चूड़ावतों का डेरा है। तुम्हें नज़र नहीं आ रही वह ऊँची पताका ?

दुर्गासिंह—(घबराया सा) फिर तो अनर्थ हो गया, महान् अनर्थ हो गया। चूड़ावतों का दल दुर्ग के पास तक पहुँच गया है और शक्तावत वहीं पड़े होंगे। कदाचित् वे अवश्य मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। अब मुझे भाग कर वहाँ पहुँचना चाहिए। (मनुष्य से) तुम क्या यहीं रहते हो?

मनुष्य—मैं चूड़ावत दल का सैनिक हूँ।

दुर्गासिंह—क्या तुम जोरावरसिंह को जानते हो?

सैनिक—हाँ जानता क्यों नहीं। मेरे पास के तम्बू में वो वह रहता है।

दुर्गासिंह—(मन में) यहाँ तक आ गया हूँ तो गौरी से भी मिल लूँ। (सैनिक से) आप जरा उससे मेरा सन्देश दे दें कि दुर्गासिंह तुम्हारी प्रतीक्षा में खड़ा है।

सैनिक—वह कहाँ आ सकेगा! आज ही हमने चलना है।

दुर्गासिंह—धिक्कार है मुझे! मैं यहाँ व्यर्थ समय खो रहा हूँ। मुझे अभी चलना……

सैनिक—देखो वही तो खड़ा है सामने। (ऊंची आवाज से) अरे हो जोरावर! अरे भाई, तनिक इधर आओ।

(जोरावर आता है, सैनिक जाता है।)

जोरावर—(आश्चर्य से) दुर्गा! तुम यहां! और इस समय! उनसे कुछ अनबन तो नहीं हो गई?

दुर्गा—(असली बात छिपाकर) बात यह है गौरी कि मैं तुमसे मिलने को सदा छटपटाती रहती हूँ। आज भी देखा कि

बज्रजी—पति कैसे ! अभी विवाह ही कब हुआ है ?

दुर्गा—(धीमी सी मन्द आवाज में) हो तो गया है।

बज्रजी—कब ! झूठ, सब झूठ।

दुर्गा - उसी समय जब आप प्रयाण करने वाले थे।

बज्रजी—प्रयाण करने वाले थे ! क्या कह रही हो तुम ! तुम्हारी पहेली मैं अब भी नहीं बूझ पाया।

दुर्गा—(सिर नीचे किये हुए) स्मरण है आपको, प्रयाण से सब से अन्तिम जिसकी पुष्पमाला आपके गले में पड़ी थी ? उसी समय पुष्पमाला के साथ इस दासी का तन-मन-धन आपके चरणों में अर्पित हो गया था। स्मरण है तब आपने पूछा था - 'तुम्हारा कोई सम्बन्धी नहीं है क्या ?' उस समय मैंने कोई उत्तर नहीं दिया था। आपने तब कहा था - 'मुझे ही अपना सम्बन्धी मानो।' आपके इन वचनों से मैं गद्गद हो गई थी और अपने आपको संसार में सब से बढ़कर सौभाग्यवती मान रही थी। आपने फिर पूछा था—'मेरा आप से क्या सम्बन्ध हुआ ?' मैंने उत्तर दिया था—'फिर बताऊँगी।' अब बता दिया है प्राणेश्वर !

बज्रजी - (व्यग्रता) यदि मुझे इस घटना का पता पहले लग जाता तो क्यों एक सुकुमार बाला के जीवन को अपने साथ काँटों में घसीटता। दुर्गा, तुम्हें पता है कि मेरा जीवन इस समय बुद्बुद के समान है, अब विलीन हुआ तब विलीन हुआ।

गौरी—(अपनी बनावटी मूछें उतारकर) भाई नहीं तो बहिन तो हूँ !

बल्लूजी—(बहुत चकित होकर) तुम भी स्त्री ! क्या मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ ! दोनों मिलकर मुझे बना रही हो !

दुर्गा—यह मेरी बहिन से भी बिढ़कर सहचरी गौरी है। सरदार रामसिंह से आप परिचित ही हैं, यह उन्हीं की अर्धांगिनी है।

बल्लूजी—सरदार रामसिंह की अर्धांगिनी ? (मुस्कराकर) इसे वे पति का प्रेम खींच लाया है क्या ? इसका ब्याह तो अब नहीं हुआ।

दुर्गा—आपको पता ही है कि सरदार जी युद्ध के नाम से भय खाते हैं। गौरी बहिन ने किसी न किसी तरह उत्साहित कर उन्हें युद्ध में भेजा है और इस वेष में उनके अंग-संग रहती है कि कहीं भाग न जायें।

बल्लूजी—(उपहास से) और तुम इसलिए मेरे अंग-संग रहती हो कि कहीं मैं भी न भाग जाऊँ ! चाणक्य बेचारे को भी तुम लोगों से नीति की बातें सीखनी होंगी।

(चूड़ावतों के शिविर से बाजों की ध्वनि आती है)

बल्लूजी—(सहसा चौंककर) चूड़ावत चलने को तैयार हैं; मुझे भी इसी दम लौटना चाहिए।

दुर्गा—हाँ, आपको चलना ही चाहिए। चलिए अभी आपको थोड़ी दूर तक पहुँचा आऊँ। गौरी, मैं अभी आई। इतने में तुम फिर जोरावरसिंह बन जाओ। (रास्ते में जाते जाते) मैं आपसे एकान्त में बात करना चाहती थी। इसीलिए

साथ आई हूं। मैं भिखारिन के वेष में दुर्ग के अंदर तक हो आई हूं। पठान अभी तक तय्यार नहीं हैं। आप तुरन्त आक्रमण करदें। इतना ही कहना था। अब जाती हूं। (चरणों पर झुक कर अभिवादन करती है)

चन्द्रजी—दुर्गे, चिन्ता न करना। आशा है कि विजय-पताका फहराता हुआ मैं शीघ्र लौटूंगा और तुम्हारे हाथों की वरमाला गले में धारण करूंगा। (दुर्गा लौटती है और वीरसिंह वृक्ष की ओट से निकल कर चन्द्रजी के पीछे-पीछे हो जाता है।

वीरसिंह-(चलते-चलते) स्त्रियों की बुद्धि कितनी तीव्र होती है! इन दोनों ने हम सब को उल्लू बना रक्खा था।

(गौरी वेष बदल कर फिर हीरासिंह बन जाती है।)

गौरी—अब क्या विचार है?

दुर्गा—और क्या विचार है, उनकी आज्ञा कैसे टाल सकती हूं!

गौरी—अकेली जाओगी?

दुर्गा—फिर दुर्गासिंह बन जाऊँगी।

गौरी—जैसी तुम्हारी इच्छा। (दोनों गले लगती हैं। दुर्गा चल पड़ती है।) (कुछ सोचकर) दुर्गा का दिल अकेले कैसे लगेगा! कितनी उमंगें लेकर आई थी पति का साथ देने! (कुछ ठहर कर) नहीं, कदापि नहीं, उसे लौटाना न चाहिए। (ज़ोर से पुकारती है) दुर्गा! दुर्गा!! अरी ओ दुर्गा!!! (दुर्गा रुकती है।) दुर्गे, लौटो मत उनके साथ साथ रहो।

दुर्गा—पर कैसे हो सकता है! उनकी आज्ञा कैसे टाल सकती हूँ!

गौरी—अरी पगली ! यह उनकी आज्ञा न थी, कथनमात्र था। वे कैसे कह सकते थे कि तुम मेरे साथ जलती आग में कूदो। यदि तू ज़रा भी 'ननु, नच' करती तो वे मान जाते।

दुर्गा—मुझे क्या पता इन बातों का।

गौरी—अब तो पता लग गया है न? मेरा कहना मानो वे मत जाओ।

दुर्गा—जब देखेंगे तो वे कहेंगे कि कहने पर भी क्यों नहीं गई।

गौरी—देखेंगे तब न! वे तुम्हें पहचान ही न पायेंगे। बड़ी-बड़ी मूँछें लगा दूँगी चेहरे पर। सोलह-सत्रह के कुमार से तीस-पैंतीस का युवक बना दूँगी।

दुर्गा (हँस कर) इन बातों में तो तुम कुशल हो ही।

(दोनों चलती हैं।)

परदा उठता है।

तीसरा दृश्य

(चमकौर का बाहरी भाग, इसके चारों ओर ऊँची ऊँची दीवारें हैं। नीचे एक गहरी परिखा है। इसके इस पार मुसलमानों का दल डेरा डाले हुए है।)

एक सैनिक—(पास खड़े दूसरे सैनिक से) राजसिंह, दुर्ग में घुसने का मार्ग कौन है?

राजसिंह—मार्ग होता तो सीढ़ियाँ ही क्यों लाते।

सैनिक—क्या सीढ़ियों से दीवारें चढ़ेंगे?

सरदार और सैनिक इकट्ठे हो जाते हैं।) द्वार की दृढ़ता को देखकर लोग हिम्मत तो न हार देंगे ?

शेष—यह बात नहीं, कठिनता की मात्रा के साथ राजपूतों के साहस की मात्रा भी बढ़ती जाती है

एक सैनिक—सरकार एक शब्द, केवल-मात्र एक आदेश का शब्द आपके मुख से निकलने की देर है, फिर देखेंगे कि आप किस प्रकार उन्मत्त पतंगों के झुण्डके झुण्ड इस दीपशिखा (द्वारकी ओर संकेत करता है) पर जलकर राख हो जाते हैं।

दूसरा सैनिक—धर्मावतार, ऐसे ही शुभ दिन को देखने के लिए हम लोग देवी-देवताओं की मनौतियां मनाते रहते हैं।

तीसरा सैनिक—सरकार, रणभूमि में प्राण देने का सौभाग्य अनेक जन्मों में संचित शुभ कर्मों द्वारा ही प्राप्त होता है। कौन सचा राजपूत इस अवसर को हाथ से निकलने देगा !

बल्लजी—(एक ऊंचे स्थान पर खड़े होकर) मातृभूमि मेवाड़ के सुपुत्रो, आपके स्वदेश-प्रेम और आत्म-सम्मान को देखकर मेरा हृदय बल्लियों उछल रहा है। हमारे पूर्वज मेवाड़-छत्र के अधिकारी हैं। इसकी रक्षा में उन्होंने अपने पुत्र, पौत्र, स्त्री, बहिन और माताओं तक का भी बलिदान किया है। हमारे पिता स्वनाम-धन्य शक्तिसिंह के आत्म-त्याग की कथा किससे गुप्त है ? हमारे ताऊ राजपूत-शिरोमणि, प्रातः स्मरणीय श्री प्रतापसिंह का जन्म ही मातृभूमि के चरणों

और साथ ही मेवाड़ का हिरौल तुम और तुम्हारी सन्तानें भोगेंगी और यदि हार गये तो इससे भी बढ़कर सौभाग्य के भागी बन जाओगे। स्वर्ग में बाप्पा रावल, धीर संग्रामसिंह,वीर शक्तिसिंह और मेवाड़-केसरी महाराणा प्रतापसिंह के चरणों में पहुँच जाओगे। आज तुम्हारी वीरता, देशभक्ति और आत्माभिमान की परीक्षा का दिन है। है तुम में हिम्मत ?

सबों कण्ठों से—निस्सीम !

बल्लूजी—है तुम में शक्ति द्वार तोड़ने की ?

सब—मातंगों जैसी !

बल्लूजी—घबरा कर जी तो न हारोगे ?

सब—कदापि नहीं !

बल्लूजी—शपथ लो खड्ग भवानी की (नंगी तलवार उठा कर), जो हमारी जननी है और राजपूतों की मान-मर्यादा और प्रतिष्ठा की रक्षिका है।

सब—(तलवारें म्यानों से निकाल कर) हम शपथ लेते हैं—

बल्लूजी—कि हम तन में प्राण रहते—

सब—कि हम तन में प्राण रहते—

बल्लूजी—अन्तला पर अधिकार करेंगे—

सब—अन्तला पर अधिकार करेंगे—

बल्लूजी—और शक्तावत वंश के—

सब—और शक्तावत वंश के—

बल्लूजी—नाम को कलंकित न होने देंगे—

सब—नाम को कलंकित न होने देंगे—

बप्पजी—और यदि यह न कर सके—

सब—और यदि यह न कर सके—

बप्पजी—तो अपना कलंकित मुख—

सब—तो अपना कलंकित मुख—

बप्पजी—मेवाड़ को कदापि न दिखायेंगे।

सब—मेवाड़ को कदापि न दिखायेंगे।

बप्पजी—मुझे आप लोगों पर विश्वास है।

(बप्पजी, दूसरे सरदार और बहुत से सैनिक क्रमशः जाते हैं। पीछे दुर्गसिंह, जिसने अब मूँछें लगाकर वेष बदला हुआ है, और दो-चार और सैनिक रह जाते हैं।)

दुर्गसिंह—ये किवाड़ टूटेंगे कैसे ?

एक सैनिक—किसी न किसी तरह टूटेंगे ही। दृढ़ धारणा यदि मन में हो तो सामने पहाड़ भी पराजयी हो जाते हैं।

दुर्गसिंह—यह तो ठीक है, परन्तु समय भी तो थोड़ा है।

दूसरा सैनिक—हमारा काम आज्ञा पालन है। जिनका यह आयोजन है वे इस समस्या का हल सोच ही रहे होंगे (जाते हैं।)

(पर्दा बदलता है।)

एक सरदार—(सरदार दिलेरख़ाँ से) सरकार, इस रुख़ को इस घर (उंगली से निर्देश कर) में रख दीजिए।

बहादुरख़ाँ—पहले फ़ील को हटायें फिर रुख़ चलने का नाम लें।

दिलेरख़ाँ—(घोड़े को प्यादे और बादशाह के बीच में रखकर) यह लो, फ़ील कहां रही ! (बहुत शोर होता है)

बहादुरख़ाँ—यह शोर-ओ गुल कैसा है ?

एक सिपाही—सरकार, दीवार के नीचे राजपूत लोग शोर मचा रहे हैं।

बहादुरख़ाँ—मचाते फिरें, हमें क्या ! खुद ही दीवारों के साथ सर पटक पटक कर मर जायेंगे। (घोड़े को चलकर) लीजिये जनाब दो चालों में बाज़ी मात समझिये।

दिलेरख़ाँ—मात करना कोई ख़ालाजी का घर नहीं, प्यादे भी बुरक़ा पहने नहीं बैठे। (फिर शोर)

(एक सिपाही भागा भागा आता है।)

सिपाही—सरकार, राजपूत लोग दीवारों को फांदने वाले हैं।

दिलेरख़ाँ—दीवारें फाँदने वाले हैं न ! अभी फाँदे तो नहीं ? मुझे ज़रा देखने दो बहादुरख़ाँ की भी हिम्मत ! कैसे मात करते हैं दो चालों में ! (ज़ोर कर हँसता है।) (वज़ीर को चल-कर) लीजिये जनाब अब अपने शाह को सँभालिए। कहीं लेने के देने न पड़ जायें।

बहादुरख़ाँ—यह भी कोई चाल है ! यह लो (घोड़े को चलकर) अब यह बंदा है किश्त—शह [illegible] !

(फिर शोर मचाता है।)

बहादुरख़ाँ—(गुस्से से) ये राजपूत लोग भी कैसी अनोखी मिट्टी के घड़े हैं। हमने इन लोगों को क्या कोई दावत दी थी जो आ धमके हैं! नाहक़ मज़े में ख़लल डाल रक्खा है। दिलेरख़ाँ, इस शोर-ओ-गुल में दिमाग़ काम न करेगा। चलो, कहीं तनहाई में चलकर बैठें।

दिलेरख़ाँ—क्या अच्छी तरकीब निकाली है हार से पीछा छुड़ाने की जनाब! इस बाज़ी को ख़त्म कर लें तब उठने का नाम लें।

बहादुरख़ाँ—अच्छा भाई, चौकी पर इसी तरह रखे रख्खे मोहरों को उठाकर ले चलते हैं। अब तो आपको इत्मीनान हो गया है?

दिलेरख़ाँ—हाँ, यह बात तो मानने वाली है।

बहादुरख़ाँ—(एक सिपाही से) देखो, तुम इसी वक़्त सिपहसालार को हमारी ओर से कहो कि क़िले की हिफ़ाज़त का काम तुम्हारा है। हमें परेशान न करें। (सिपाही जाता है।) शतरंज की लड़ाई में असली लड़ाई की निस्बत हज़ार दरजा ज़्यादा लुत्फ़ है। हार-जीत तो वैसी ही, पर न मारधाड़ और न धरपकड़। वहाँ तो मुफ़्त फ़साद है, ख़ून के दरिया बह जाते हैं, फिर भी जीत मयस्सर हो या न हो। (एक सिपाही से) इधर आओ, तुम दोनों इस चौकी को उठाकर हमारे पीछे पीछे ले आओ।

बल्लजी—यह बात नहीं दुर्गा। यश को दुर्गा पर गर्व है।

दुर्गा—फिर उस पर इतना अविश्वास क्यों?

बल्लजी—यह अविश्वास नहीं, मोह है।

(रणभेरी की आवाज़ सुनाई देती है)

बल्लजी—ओह! इतना समय यहीं पर गुज़र गया है। वे लोग भेरी द्वारा मुझे बुला रहे हैं।

दुर्गा—आप पगों में भी आपके पीछे पीछे आती हूँ। (मुस्करा कर) भूल हो गई, आता हूँ।

(बल्लजी जाता है।)

दुर्गा—आज की यह घड़ी मेरे जीवन की स्वर्णनिधि है। प्राणेश्वर से केवल दो-चार बातें ही करना चाहती थी। उनका अवसर पाकर मैं निहाल हो गई हूँ।

(जाती है।)

(परदा उठता है)

सातवाँ दृश्य

(थामतजा का बाहरी भाग। राजपूत वीर सीढ़ियाँ लगाकर दुर्ग के अंदर प्रवेश करने का यत्न कर रहे हैं। दुर्ग के गुंबदों में बैठे मुग़ल-सिपाही तीर चला चलाकर उन्हें विफल कर रहे हैं।)

एक राजपूत सैनिक—(दूसरे सैनिक से) इस तरह काम कैसे चलेगा भाई? हम लोगों का व्यर्थ संहार हो रहा है।

दूसरा सैनिक—वे लोग ऊपर हैं और हम नीचे। हम कर ही क्या सकते हैं!

(सालुम्बा सरदार आते हैं।)

सेना सरदार—(सैनिकों से) अब आगा-पीछा करने का अव
नहीं है वीरो। मरने डरने की ओर मत देखो, कदम आ
ओर देखो। इन दीवारों के फाँदने में ही हमारी सफलता
है। (कुछ सैनिकों से) इन्हीं लाशों पर (हाथ से लाशों
की ओर निर्देश कर) सीढ़ियां टिका कर चढ़ क्यों नहीं
जाते! (कुछ सैनिक ऊपर चढ़ने का यत्न करते हैं। और
ऊपर से शत्रु तीर चलाते हैं। राजपूत नीचे से तीर चलाते हैं।
ऊपर से तीर चलने बन्द हो जाते हैं।

(रामसिंह और ज़ोरावरसिंह एक सीढ़ी उठाये आते हैं।)

ज़ोरावरसिंह—लो मैं सीढ़ी लगाता हूँ; पहले आप चढ़ें और आप
के पीछे ही मैं भी आता हूँ।

रामसिंह—तुम्हारा अविश्वास अभी गया नहीं ज़ोरावर। सीढ़ी
लगाओ। (ज़ोरावरसिंह सीढ़ी लगाता है, और दोनों उस पर
चढ़ते हैं। ऊपर से कई तीर आते हैं, परन्तु उन्हें लगता एक भी
नहीं, वे शिखिर पर पहुँच जाते हैं। पहुँच जाने के बाद ज़ोरावर
ठोकर मारकर सीढ़ी नीचे गिरा देता है।)

रामसिंह—सीढ़ी क्यों गिरा दी? इसलिए कि मैं भाग न जाऊँ?

ज़ोरावरसिंह—यह बात नहीं। मेरे जैसी दुर्बल स्त्री से......

रामसिंह—क्या कहा स्त्री! तुम......

ज़ोरावरसिंह—(जल्दी से) मैं यह कह रहा था कि मेरे जैसे स्त्री से
दुर्बल नवयुवक को भाग जाने का अवसर न मिले।

सेना सरदार—(नीचे से) शाबाश रामसिंह! मैं
भी आता हूँ।

(सीढ़ी पर चढ़ने लगते हैं। ऊपर से तीर चलते हैं, पर वे उनकी परवाह
न कर चढ़ते ही जाते हैं। अन्त में दीवार पर पहुँच जाते हैं
और वहां पर मुगल सिपाहियों से युद्ध करते हैं। कई
सिपाही मारे जाते हैं और कई भाग जाते हैं।
नीचे से राजपूत जयध्वनि करते हैं। इतने
में एक तीर आकर उनके हृदय में
लगता है। वे पछाड़ खाकर
दीवार से गिरते हैं।
बन्दा ठाकुर जो
नीचे से
सीढ़ी
पर चढ़ रहा है,
उन्हें बीच में ही थाम लेता है
और उन्हें मरा जान कर उनकी लाश को एक कपड़े में
बांधकर पीठ पर लाद लेता है।)

रामसिंह—(आँखों से आँसू लाकर, चढ़ते चढ़ते) विजय-लक्ष्य पर
जब हम पहुँचने को ही थे कि सरदार हमें छोड़ गये
फिर भी विजय उन्हीं की है। (वह लाश उठाये ही दीवार
पर पहुँच जाता है। सैनिकों से) वीरो, एकदम धावा बोल
दो। सरदार ने अपना बलिदान कर हमारा मार्ग साफ कर
दिया है। (ज़ोर से) थोड़ा और यत्न लगाने की आवश्य-
कता है। शत्रुओं के पैर उखड़ चुके हैं। विजय तुम्हारे
सामने है। बोलो—'सालुम्बा सरदार की जय।'

सब सैनिक—(भागता आता हुआ) सरकार, राजपूत सिपाही दीवारों को फाँद कर किले में आ घुसे हैं।

बहादुर खाँ—तो हम क्या करें! सिपहसलार को कहो।

सब सैनिक—वह अकेला क्या कर सकता है सरदार। सिपाही भाग रहे हैं, उन्हें धीरज देने वाला भी कोई नहीं।

दिलेरखाँ—हमारे रोके वे रुक थोड़े ही जायेंगे! जान किसको प्यारी नहीं होती! ठीक है न बहादुरखाँ?

बहादुरखाँ—ठीक क्यों नहीं! आप हुआ जग परलय। (सिपाही से) मुँह क्या देख रहे हो! जाओ। (सिपाही जाता है।) नामुरादों ने यहाँ भी पीछा नहीं छोड़ा।

दिलेरखाँ—अजी, उधर ध्यान ही न दीजिए। इस बार फतह मेरी होगी, यह पहले ही बता देता हूँ।

(सिपहसलार आता है।)

सिपहसलार—(बेचैन सा) सरदार, आप इधर बैठे हैं, पर मालूम है उधर क्या हो रहा है?

दिलेरखाँ—मालूम क्यों नहीं! पर हम क्या कर सकते हैं! जरा जी बहला रहे थे, बीच में खलल डाल दिया।

सिपहसलार—सरदार, यह वक्त जी बहलाने का नहीं, किले की हिफ़ाज़त का है।

बहादुरखाँ—यह काम तुम्हारा है। अगर जंग के मौके पर भी हमें ही दौड़ धूप करनी पड़े तो तुम किस मरज़ की दवा हो?

दिलेरखाँ—अमन-चैन के वक्त इन्तज़ाम करना हमारा काम है!

मिनदार—(अनमना सा होकर) जैसी आपकी मर्ज़ी । (जाते जाते) जिस किले की हिफ़ाज़त का भार ऐसे राहबरों के कंधों पर हो, वह अब भी गिरा, तब भी गिरा ।

(जाता है)

दिलेरख़ाँ—चाल मेरी है न ! लो मैं वज़ीर चला ।

बहादुरख़ाँ—वज़ीर तो चल दिया, अब अपने रुख की खैर मनाओ। यह लो किश्त । जनाब, अब रुख दे दो ।

(कुछ राजपूत सिपाही नंगी तलवारें लिये आते हैं ।)

एक सिपाही—यही हैं इस किले के सरदार । काट दो इनका सिर ।

बहादुरख़ाँ—(हैरान होकर) यह क्या ! ज़रा सोच विचार कर बात करो भाई । सिर क्या हुए गाजर-मूली हुए । ख़ुदा के बंदो, कुछ तो ख़ुदा का ख़ौफ़ करो ।

दिलेरख़ाँ—कैसी अच्छी चाल सूझ रही थी ! एक दम भूल गई । हाँ, घोड़ा······

दूसरा सिपाही—देवीसिंह, क्या मारोगे इन्हें । इन्हें बंदी कर लो ।

(सिपाही उन्हें पकड़ लेते हैं ।)

दिलेरख़ाँ—अगर इस मरतबा मैं घोड़ा चलता तो·······

एक सिपाही—अब घोड़े रणभूमि में चलाना साहब, यहाँ के घोड़े दौड़ाने से क्या लाभ !

(उन्हें लेकर चले जाते हैं ।)

(परदा उठता है ।)

यह क्या ! ओह ! सामने आते ही हृदय प्रकम्पित हो उठता है । शरीर काँपने लगता है । महाप्रलय का दृश्य इससे भीषण क्या होगा !

(प्रधान महामन्त्री आते हैं ।)

महामन्त्री—प्रणाम अन्नदाता ! महाराज ने क्यों मुझे स्मरण किया है ?

राणा—हाँ, मैंने ही आप को बुलाया है मन्त्री जी ।

महामन्त्री—इतने सवेरे ! कारण !

राणा—आपको इसलिए कष्ट दिया है कि मैंने एक भयंकर स्वप्न देखा है ।

महामन्त्री—क्या एक स्वप्नमात्र ने ही मेवाड़ के वीर राणा को उद्विग्न कर रक्खा है !

राणा—यह स्वप्न नहीं था मन्त्री जी, एक भावी सच्ची घटना—दैवी घटना का सूत्रपात प्रतीत होता है । एक स्वप्न पहले भी देखा था—इसी समय, प्रभात में अन्तःपुर प्रयाण से पूर्व ।

महामन्त्री—फिर भी महाराज, मेवाड़ के राणा साक्षात् प्रलयाग्नि में भी कूदने से नहीं विचलित होते । स्वप्न तो फिर स्वप्न है ।

राणा—बात तो आप ठीक कहते हैं । परन्तु इन बातों से हृदय की बेचैनी कम नहीं हो रही ।

(राजपुरोहित आते हैं ।)

राजपुरोहितजी—जय हो मेवाड़ाधिपति की

भग्गजी—कुल्हाड़ों की धारायें कुंठित हो गई हैं, परन्तु ये टूटने का नाम ही नहीं लेते।

(वल्लजी आते हैं।)

वल्लजी—फिर क्या किया जाय ?

योध—मेरे विचार में बीस पचीस सैनिक एक ही बार भालों और कुठारों से आक्रमण करें, शायद युद्ध बन जाय।

वल्लजी—यह प्रयास भी कर देखो, पर समय बहुत कम है।

(पचीस तीस सैनिक भाले और कुल्हाड़े लेकर किवाड़ों को तोड़ने का यत्न करते हैं, परन्तु असर कुछ नहीं होता। कई सैनिक कीलों से चोटें खाकर ज़ख्मी हो जाते हैं।)

योध—मुझे एक बात सूझी है। हाथी की टक्कर से यह अवश्य टूट जायगा।

वल्लजी—संभव है। (एक सैनिक को) गजरक्षक को मेरी सवारी का हाथी लाने को तुरन्त आदेश दो।

सैनिक—जो आज्ञा। (जाता है।)

भग्गेश—बहुत सा समय व्यर्थ जा रहा है। मुझे भय है कि चूड़ावत कहीं पहले ही प्रवेश न करलें।

(हाथी लाया जाता है।)

वल्लजी—(गजरक्षक से) अरिसिंह, हाथी की टक्कर से इस द्वार को तोड़ना है।

अरिसिंह—जो आज्ञा।

(हाथी द्वार को टक्कर मारता है, परन्तु कीलों के माथे में धंस जाने से घायल होकर चिंघाड़ मार कर लौट जाता है। दो-तीन बार इस प्रकार किया जाता है, परन्तु कुछ नहीं होता है।)

बल्लूजी—यह द्वार आज किसी राजपूत योधा का बलिदान चाहता है।

योध—बलिदान के लिए तो हम सब लोग आये ही हैं। किस भाग्यवान की बलि चाहता है यह ?

बल्लूजी—मैं अभी बताता हूँ ! (जल्दी से द्वार के कीलों से सटकर खड़ा हो जाता है।) (गजरक्षक से) अरिसिंह, अब टक्कर लगवाओ हाथी से, कीलें इसे न चुभेंगी।

योध—भैया ! यह क्या !

(अचानक दुर्गासिंह सैनिकों की पंक्ति से भाग कर आता है और बल्लूजी को बलात् हटाकर उसका स्थान ले लेता है।)

दुर्गासिंह—अरिसिंह, दौड़ाओ हाथी को।

(सब लोग चकित हो जाते हैं)

बल्लूजी—दुर्गासिंह, तुम्हारा यह काम नहीं है।

दुर्गासिंह—क्यों सरकार।

बल्लूजी—यह अधिकार दल के अधिकारी का है।

दुर्गासिंह—मातृभूमि की सेवा में सब के अधिकार समान होते हैं।

बल्लूजी—तुम्हारे कोमल शरीर से यह काम न हो सकेगा ?

दुर्गासिंह—यह तो परिणाम प्रकट करेगा।

बल्लूजी—दुर्गा, यह मेरी परीक्षा का समय है। लोग कहेंगे कि बल्लू ने अपने प्राणों की रक्षा के हेतु एक सुकुमार (कुछ रुक कर) नवयुवक के जीवन का बलिदान कर दिया।

सरदार—इस किले की फौज का सिपहसालार।

राजा—(व्यंग्य से) कैसी फौज कैसे सिपहसालार! सरदार जी, कायरों की तरह छिपकर तीर चलाते आपको लज्जा नहीं आई?

सिपहसालार—मैंने तीर इस पर नहीं चलाया था, आप पर चलाया था। यह बेचारा तो यूँ ही बीच में आगया और निशाना बन गया। मेवाड़ के दो स्तूप तो गिर ही चुके थे। चाहा था तीसरे को भी गिराना।

राजा—यह कहते तुम्हें लज्जा नहीं आती? दो स्तूप क्या तुमने गिराये हैं?

सिपहसालार—किसी ने गिराये हों। मैंने या मेरे सिपाहियों ने। बात एक ही है। राजा साहिब आपको भी इस जीत का इतना गर्व क्यों है? आपने भी तो एक तीर तक नहीं चलाया। इन्हीं बेचारों को (सैनिकों की ओर इशारा कर) लाशों की सीढ़ियाँ बना कर जस और नामवरी के ऊँचे शिखर पर पहुँचना चाहते हो? दुनियाँ की यही चाल है—बोते और हैं, काटते और हैं!

बोध—तुम बन्दी हो, बन्दी का आचरण करो।

(सिपहसालार व्यंग्यसहित स्मित के साथ चुप हो जाता है।)

राजा—इसे डेरे में ले चलो। वहीं इसका न्याय होगा।

(परदा गिरता है।)

पटाक्षेप

—:०:—

राणा—क्यों ?

बन्दा—सरकार, रामसिंह जो भाग्यवश जीवित है, वही स्वयं अपने मुख से सब कुछ बतायेगा।

राणा—बंदा जी, मेवाड़ को जितना गर्व अपने पुत्रों का है उससे किसी प्रकार भी कम अपनी पुत्रियों का नहीं है। यदि सिंहनियां न हों तो सिंह कहाँ से उत्पन्न हों!

(इतने में एक तीर आकर दुर्गा के हृदय में लगता है। वह पछाड़ खाकर वस्तजी को लिये उसके ऊपर गिर जाती है। सब के सब इधर उधर देखने लगते हैं।)

राणा—(क्रोध से) यह किस नीच का काम है ? पकड़ लाओ उसे।

दुर्गा—(हंसते हुए चेहरे के साथ) मैं यही चाहती थी राणा जी। मेरी इच्छा पूर्ण हुई है। अन्तिम निवेदन यही है कि हम दोनों को एक ही चि······(प्राण दे देती है।)

राणा—तुम सती-शिरोमणि हो देवी। तुम्हारा सहवास अब सती पद्मिनी और कर्णवती के साथ स्वर्ग में होगा।

(दो सैनिक एक मुगल सरदार को पकड़े लाते हैं। वेषभूषा से वह सेनाध्यक्ष मालूम होता है।)

राणा—कौन है यह ?

सैनिक—यही है जिसने इसके (दुर्गा की ओर इशारा कर) प्राण लिये हैं।

राणा—तुम कौन हो ?

रतन—इस किले की फ़ौज का सिपहसलार।

रत्न.—(व्यंग से) जैसी फ़ौज वैसे सिपहसलार! सरदार जी, चोरों की तरह छिपकर तीर चलाते आपको लज्जा नहीं आई?

सिपहसलार—मैंने तीर इस पर नहीं चलाया था, आप पर चलाया था। यह बेचारा तो यूँ ही बीच में आगया और निशाना बन गया। मेवाड़ के दो स्तून तो गिर ही चुके थे। चाहा था तीसरे को भी गिराना।

राणा—यह कहते तुम्हें लज्जा नहीं आती? दो स्तून क्या तुमने गिराये हैं?

सिपहसलार—किसी ने गिराये हों। मैंने या मेरे सिपाहियों ने। बात एक ही है। राणा साहिब आपको भी इस जीत का इतना गर्व क्यों है? आपने भी तो एक तीर तक नहीं चलाया। इन्हीं बेचारों की (सैनिकों की ओर इशारा कर) लाशों की सीढ़ियाँ बना कर जस और नामवरी के ऊँचे शिखर पर पहुँचना चाहते हो? दुनियाँ की यही चाल है—बोते और हैं, काटते और हैं!

बोध—तुम बन्दी हो, बन्दी का आचरण करो।

(सिपहसलार व्यंग्यसहित स्मित के साथ चुप हो जाता है।)

राणा—इसे डेरे में ले चलो। वहीं इसका न्याय होगा।

(परदा गिरता है।)

पटाक्षेप

—:0:—